ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 54 अंक 3

वार्षिक चंदा ₹ 150 मार्च, 2021 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती
वर्ष : 54
अंक : 03
मार्च 2021
फाल्गुन-चैत्र, शक संवत् 1942
मूल्य : ₹ 15.00
पृष्ठ : 36
www.hau.ac.in/page/haryanakheti
निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.74 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित
© कापीराइट प्रकाशकाधीन

मुख्य संरक्षक
प्रो. समर सिंह
कुलपति

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. एच. एस. सहारण

सम्पादक
डॉ. सुषमा आनन्द
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलनकर्त्ता
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

संपादकीय कार्यालय
विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
हिसार, दूरभाष : 01662-255274

हरियाणा खेती में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

हरियाणा खेती मंगवाने की दरें :
आजीवन सदस्यता : ₹1500 (30 वर्ष के लिए)
वार्षिक : ₹150
पत्रिका न मिलने की शिकायत के लिए hkheti.helpdesk@gmail.com पर ईमेल करें। हरियाणा खेती में सुझाव या आप किस विषय पर जानकारी चाहते हैं, के लिए भी इसी ईमेल पर लिखें या संपर्क करें। दूरभाष: 01662-255274

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें
प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

इस अंक में

टमाटर की फसल में कीड़ों की रोकथाम
भूपेन्द्र सिंह, नरेन्द्र कुमार एवं दलीप कुमार 1

कृषि में नैपसैक छिड़काव पम्प व उचित छिड़काव-तकनीक का योगदान
सुरेन्द्र कुमार शर्मा, सतबीर सिंह पुनिया एवं सूबेसिंह 2

फलों की फसल में पक्षी नुकसान का प्रबंधन
नेहा शर्मा, अमित शर्मा एवं राजभान सिंह तोमर 3

रामधन सिंह बीज फार्म- एक परिचय
पुनीत कुमार, राजेश कथवाल एवं अरविंद मलिक 4

जैविक खेती में कीट प्रबंधन
एस. पी. यादव, बलबीर सिहं एवं सत्यजीत 5

मानव स्वास्थ्य में सब्जियों का महत्व
करण सिंह सैनी, एस. के. धनखड़ एवं नरेंद्र गोयल 6

चने में फली छेदक कीट प्रबंधन
बजरंग लाल शर्मा, अनिल एवं ऋतु भाल 7

फलों एवं सब्जियों की संरक्षित खेती – लाभदायक व्यवसाय
मनेन्द्र सिंह, छतरपाल महला एवं सुमित देसवाल 8

फसल उत्पादन में निम्न गुणवत्ता वाले सिंचाई जल का प्रबंधन
सतेन्द्र कुमार, मुकेश कुमार जाट एवं कविता 10

मूंग की जैविक खेती
आर. डी. जाट, प्रगति यादव एंव किशोर चन्द कुम्हार 11

पौष्टिकता और स्वास्थ्य से भरपूर बेबी कॉर्न
सुमन, सोनू कुमार एवं शोभित 12

आलू की फसल को रोगों से कैसे बचाएं
सरिता, राकेश कुमार एवं सतीश कुमार मेहता 18

हरियाणा में जापानी पोदीना की खेती
राजेश कुमार आर्य, पवन कुमार एवं झाबरमल सुतलिया 19

मशरूम के मुख्य कीट : लक्षण व प्रबन्धन
रूबी गर्ग, सुनीता यादव एवं रति मुक्तेशवर 20

आम के रोग व नियन्त्रण
राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण 21

फव्वारा सिंचाई तकनीक : कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगिता
नरेंद्र कुमार, संजय कुमार एवं आशीष कम्बोज 22

वस्त्र रंगाई करने की विभिन्न प्रकार की विधियाँ
निशा आर्य एवं ललिता रानी 23

बायोगैस: अपशिष्ट से ऊर्जा
पवन कुमार, राज कुमार एवं नरेन्द्र कुमार 26

फसल-अवशेष के प्रभाव एवं प्रबंधन
नरेंद्र, रोहतास कुमार एवं धीरज पंघाल 28

यूरिया-शीरा-खनिज ब्लॉक : पोषक तत्वों का भण्डार
सज्जन सिंह, रेखा दहिया एवं राजेन्द्र सिंह 29

सिंचाई की विभिन्न विधियां तथा इसके लाभ
अजित सांगवान, रवि एवं रवि 30

वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं : कारण एवं समाधान
संतोष एवं कविता दुआ 31

कपड़ों की खरीददारी हेतु सुझाव
पूनम कुमारी, नीलम रोज़ एवं निगम रानी 32

वर्चुअल कृषि मेला : बदलते समय की नई सोच
अशोक कुमार, राजेश कुमार एवं सूबे सिंह 33

स्थाई स्तम्भ
अप्रैल मास के कृषि कार्य 13

हरियाणा खेती सम्बन्धी
स्वामित्व विवरणी
फार्म-4 [देखिये नियम 8]

प्रकाशन स्थान	:	चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक का नाम	:	डॉ. आर. एस. हुड्डा
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	:	–
पता	:	निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
प्रकाशक का नाम	:	डॉ. आर. एस. हुड्डा
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
संपादक	:	डॉ. सुषमा आनन्द
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	:	–
पता	:	संपादक हिन्दी, प्रकाशन अनुभाग चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मैं, आर. एस. हुड्डा, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

हस्ताक्षर
आर. एस. हुड्डा
प्रकाशक

टमाटर की फसल में कीड़ों की रोकथाम

भूपेन्द्र सिंह, नरेन्द्र कुमार[1] एवं दलीप कुमार[2]
सायना नेहवाल कृ. प्रौ. प्र. एवं शि. संस्थान
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

टमाटर एक बहुउपयोगी सब्जी फसल है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाने में किया जाता है जैसे सब्जी, चटनी, सूप इत्यादि। लगभग सभी प्रकार की सब्जियों में प्याज़ के अलावा टमाटर एक दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है। इस प्रकार टमाटर की मांग हमेशा ही रहती है। टमाटर की फसल खुले खेत व पॉलीहाउस दोनों ही स्थितियों में उगाई जाती है। टमाटर की फसल को मुख्य रूप से निम्न कीट नुकसान पंहुचाते हैं जैसे – सफेद मक्खी, चेपा, कटुआ सूंडी, सुरंग बनाने वाला कीट एवं फल छेदक सूण्डी।

सफेद मक्खी : यह सफेद पंखों वाला छोटा-सा कीट है जिसका शरीर पीले रंग का होता है। इसके शिशु पत्तों से चिपके रहते हैं। शिशु व प्रौढ़ पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। यह पत्तों पर शहद जैसा चिपचिपा पदार्थ छोड़ते हैं जिस पर काले रंग की फफूंद उग जाती है। यह मक्खी मरोड़िया रोग भी फैलाती है। इसका प्रकोप बरसात की फसल में अधिक होता है।

प्रबन्धन :

- इस मक्खी से बचाव के लिए नर्सरी ट्रे नाइलॉन के नेट के नीचे रखें।
- मित्र कीटों का संरक्षण करें।
- अधिक प्रकोप की अवस्था में 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

चेपा : ये कीड़े हरे रंग के, जूं की तरह होते हैं जो पत्तों की निचली सतह से रस चूस कर काफी हानि पंहुचाते हैं। ये कीट विषाणु रोग भी फैलाते हैं।

प्रबन्धन :

- मित्र कीटों का संरक्षण करें।
- अधिक प्रकोप की अवस्था में 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

कटुआ सूण्डी : यह कीट भी पौध अवस्था में फसल को नुकसान पंहुचाता है। इस कीट के वयस्क 25 मिलीमीटर लम्बे होते हैं जिनके अगले पंख भूरे रंग के तथा पीछे वाले राख के समान सफेद रंग के होते हैं। इसके अण्डे अलग-अलग दिए जाते हैं तथा ये सफेद क्रीम रंग के होते हैं। इसकी पूर्ण विकसित सूण्डियां छूने पर गुच्छानुमा आकार बना लेती हैं। ये सूण्डियां पौधे के आसपास भूमि की ऊपरी 5-10 सैं.मी. सतह में रहती हैं जो दिन के समय मिट्टी में छिपी रहती है तथा रात के समय बाहर निकलकर छोटे पौधों को ज़मीन के नज़दीक से काटकर उन्हें नष्ट कर देती हैं।

प्रबन्धन :

- गोबर की कच्ची खाद का प्रयोग न करें। गोबर की खाद पूरी तरह से गली-सड़ी होनी चाहिए।
- खेत तैयार करते समय 800 मि. ली. क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. को 8-10 कि. ग्रा. रेत में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।
- इसके बाद भी अगर इस कीट की समस्या है तो यही दवाई 30 मि.ली. प्रति 15 लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर पौधों की जड़ों में डालें।

सुरंग बनाने वाले कीट : यह पीले रंग की छोटी-सी मक्खी होती है जिसकी सूंडियां पौधों को नुकसान पहुंचाती हैं। इन कीटों की मादा पत्तों के अन्दर अण्डे देती हैं जिनसे सूंडियां निकल कर पत्तों के अन्दर घुस जाती हैं। ये सूंडियां पत्तों में से हरे पदार्थ को खाकर सुरंग बना देती हैं और पत्तों पर टेढ़ी-मेढ़ी सफेद रंग की लाईनें बन जाती हैं। बाद में ऐसे पत्तों का रंग भूरा हो जाता है और इन पर फफूंद उग जाती है। इस कारण पत्ते अपना भोजन नहीं बना पाते और पौधा धीरे-धीरे मर जाता है।

प्रबन्धन :

- एक निश्चित अंतराल पर पौधों की देखभाल करते रहें तथा जहां कहीं भी इस कीट से ग्रसित कोई पत्ता दिखाई दे तो उसे नष्ट कर दें।
- परजीवियों का संरक्षण करें।
- अधिक प्रकोप की अवस्था में 2 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

फल छेदक सूण्डी : यह सूण्डी हरे या पीले-भूरे रंग की होती है। इसके शरीर के ऊपरी भाग पर तीन लम्बी कटवां सलेटी रंग की तथा साईड में दोनों तरफ सफेद रंग की धारियां होती हैं। इस कीट की छोटी सूण्डियां कोमल पत्तियों को खाती हैं। बड़ी सूण्डियां कलियों, फूलों, फलों में सुराख कर देती हैं जिससे ग्रसित फल बाद में सड़ जाते हैं। अत्यधिक प्रकोप की अवस्था में पूरा खेत ही नष्ट हो जाता है।

प्रबन्धन :

- कीटग्रसित फल तोड़कर मिट्टी में दबा दें।
- मित्र कीटों का संरक्षण करें।
- मध्य मार्च के आस-पास पत्तों पर जैसे ही फल छेदक सूण्डी के अण्डे दिखाई दें तो 20,000 ट्राइकोग्रामा परजीवी प्रति एकड़ छोड़ें व इसके चार दिन बाद इतने ही परजीवी पुनः छोड़ें।
- इसके बाद 10-10 दिन के अंतर पर 1.0 लीटर निम्बीसिडीन या 400 ग्रा. बी.टी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- अत्यधिक प्रकोप की अवस्था में नीचे बताए गए किसी एक कीटनाशक का छिड़काव 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ करें।
  - 75 मि.ली. फैनवेलरेट 20 ई.सी.
  - 200 मि.ली. डेल्टामैथ्रिन 2.8 ई.सी.
  - 60 मि.ली. साइपरमैथ्रिन 25 ई.सी./150 मि.ली. साइपरमैथ्रिन 10 ई.सी. ●

[1]जिला विस्तार विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर, हिसार।
[2]सहायक वैज्ञानिक, कीट विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

कृषि में नैपसैक छिड़काव पम्प व उचित छिड़काव-तकनीक का योगदान

सुरेन्द्र कुमार शर्मा, सतबीर सिंह पुनिया एवं सूबेसिंह[1]
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

छिड़काव पम्प का कृषि में हमेशा प्रयोग होता रहा है। छिड़काव करने से पहले छिड़काव पम्प व छिड़काव की सही तकनीक का ज्ञान होना अति आवश्यक है। छिड़काव पम्प को निम्नलिखित 6 भागों में बांटा गया है : (1) पम्प, (2) पॉवर का उद्गम स्थान, (3) छिड़काव टैंक, (4) तरल पदार्थों को मिलाने वाला यन्त्र, (5) विभाजन पद्धति एवं (6) प्रैशर बनाना

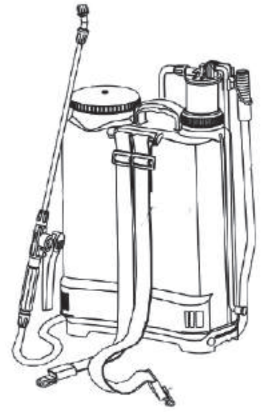

(1) पम्प : पम्प का कार्य छिड़काव के लिए उपयुक्त तरल पदार्थों को नोज़ल तक पंहुचाने में मदद करने के साथ-साथ इसके लिए दबाव पैदा करना है।

(2) पॉवर का उद्गम स्थान : किसी भी यन्त्र को चलाने के लिए पॉवर (शक्ति) चाहिए। अत: छिड़काव करने के लिए हाथ से, खिंचाव द्वारा, मोटर से व ट्रैक्टर द्वारा पॉवर पैदा की जा सकती है।

(3) छिड़काव टैंक : छिड़काव टैंक वह होता है जिसमें छिड़काव करने वाले तरल पदार्थ को भरा जाता है। यह टैंक एक छलनी के माध्यम से जुड़ा होता है। छिड़काव टैंक का मुँह बहुत छोटा नहीं होना चाहिए क्योंकि छोटे मुँह से तरल पदार्थ को भरने में परेशानी पैदा होती है।

(4) तरल पदार्थों को मिलाने वाला यन्त्र : छिड़काव के लिए तैयार तरल पदार्थ में एकरूपता का होना अति आवश्यक है। इस यन्त्र से तरल पदार्थ में एकरूपता लाई जाती है। यह यन्त्र मैटल की एक छड़ी के रूप में होता है।

(5) विभाजन पद्धति : इस पद्धति में नोज़ल, छिड़काव लान्स व छिड़काव बूम को शामिल किया गया है। छिड़काव नोज़ल तरल पदार्थ को बूंद-बूंद में बदलने का कार्य करता है ताकि छिड़काव में एकरूपता समाई रहे। नोज़ल भी कई प्रकार का होता है जैसे फ्लैट फैन, फ्लड (कट), होलो कोन आदि। पीतल या स्टील की 90 सैं.मी. लम्बाई की रॉड को छिड़काव लान्स कहते हैं जो कि छिड़काव पम्प की हौज पाईप से जुड़ी होती है जिसमें नोज़ल लगा होता है। छिड़काव लान्स का कार्य छिड़काव के दौरान प्रयोग की जाने वाली दवाई पर नियन्त्रण रखना है। छिड़काव बूम एक सीधे पाईप की तरह होता है जिस पर दो या दो से अधिक नोज़ल लगे रहते हैं जिनके बीच की दूरी 50 सैं. मी. पर रहती है। बूम की लम्बाई 1 से 15 मीटर तक लम्बी भी हो सकती है। छोटी बूम जिसमें 2 या 3 नोज़ल लगे होते हैं का प्रयोग हाथ से चालित छिड़काव पम्प से किया जाता है जबकि लम्बे बूम का प्रयोग ट्रैक्टर से चालित छिड़काव पम्प से किया जाता है। छिड़काव बूम का फायदा यह रहता है कि इससे खेत में घास की चौड़ी पट्टी पर छिड़काव किया जा सकता है। इस

फ्लैट फैन स्प्रे नोक

होलो कोन स्प्रे नोक

प्रकार छिड़काव भी जल्दी होता है व छिड़काव में एकरूपता होने के कारण छिड़काव का फसल पर प्रभाव बना रहता है।

(6) प्रैशर बनाना : ट्रैक्टर चालित छिड़काव में प्रैशर से छिड़काव किया जाता है। इस प्रकार ट्रैक्टर द्वारा प्रैशर को संचालित किया जाता है। उद्यानों में बड़े-बड़े पेड़ों पर अधिक ऊँचाई तक छिड़काव करने में इसका प्रयोग किया जाता है।

फलड (कट) स्प्रे नोक

छिड़काव में नोज़ल का बहुत बड़ा योगदान है। अत: छिड़काव करने से पहले नोज़ल का ज्ञान होना अति आवश्यक है। यहां पर छिड़काव के लिए प्रयोग होने वाले विभिन्न प्रकार के नोज़ल दिखाए गए हैं।

यह खरपतवारनाशकों के प्रयोग के लिए सही नहीं हैं।
कीटनाशकों व फफदूंनाशकों के लिए सही है।
फाईन स्प्रे करने के लिए उपयुक्त हैं।
यह एक से अधिक नोज़लों वाली बूम के लिए उपयुक्त हैं।
इससे छिड़काव का आकार नुकीलापन लिए हुए होता है।
इससे स्प्रे असमान होता है।
इससे बड़ी बूंदो के साथ स्प्रे होता है।
कम प्रैशर पर भी छिड़काव का दायरा अधिक होता है।
इससे किनारों पर कम छिड़काव होता है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **सह-निदेशक प्रकाशन**

[1]सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा) विस्तार शिक्षा निदेशालय

फलों की फसल में पक्षी नुकसान प्रबंधन

✍ **नेहा शर्मा, अमित शर्मा एवं राजभान सिंह तोमर**
बागवानी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पक्षी फल उत्पादकों के लिए समस्या पैदा करते हैं। कई खेतों या बागों पर, पक्षी की क्षति न्यूनतम है, कुछ उत्पादकों के लिए, पक्षियों से समस्याएं काफी हो सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप फलों की फसल का बड़ा हिस्सा बर्बाद या क्षतिग्रस्त हो सकता है। उपस्थित सभी पक्षी प्रजातियाँ फलों को नुकसान नहीं पहुंचातीं और सभी प्रजातियों के खिलाफ कोई नियंत्रण तकनीक प्रभावी नहीं होगी। इसी प्रकार, विभिन्न प्रजातियों में पर्यावरणीय कारकों के आधार पर अलग-अलग वर्षों में क्षति हो सकती है, जैसे कि सूखे, ठंड आदि के कारण वैकल्पिक खाद्य स्रोतों की उपलब्धता। कीड़ों की अधिकता और मौसम पक्षियों की संख्या को प्रभावित करते हैं। उत्पादकों के नुकसान के लिए जिम्मेदार विशिष्ट पक्षी प्रजातियों से अक्सर अनजान होते हैं और विभिन्न प्रजातियों के लिए अलग-अलग प्रबंधन दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। हानिकारक पक्षियों द्वारा नुकसान को विभिन्न तरीकों का उपयोग करके कम किया जा सकता है जिन्हें घातक और गैर-घातक तरीकों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है :

घातक तरीके :

- घातक तरीकों में पक्षियों को मारना, गोली मारना, फंसाना, धूनी, ज़हर का काटना, अंडा और घोंसला नष्ट करना आदि शामिल हैं। अतीत में, घातक तरीकों का इस्तेमाल भारत में पक्षी के कीटों को नियंत्रित करने के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता था।
- किसी भी पक्षी प्रजाति को मारना अब भारत में गैरकानूनी है और जनता द्वारा अनुमोदित नहीं है। उपर्युक्त तथ्यों के मद्देनजर, इन दिनों पक्षी प्रबंधन के घातक तरीकों की सिफारिश नहीं की जाती है।

गैर-घातक तरीके :

- वे पक्षियों की हत्या को शामिल नहीं करते हैं, बल्कि उन्हें अपने पसंदीदा फसलों के खेतों से हटाने के उद्देश्य से करते हैं।
- सफल निरस्तीकरण के परिणामस्वरूप, क्षति बड़े क्षेत्रों में वितरित हो जाती है और इस प्रकार अब आर्थिक चोट नहीं रहती है।
- यदि संबंधित प्रजातियों के वैकल्पिक खाद्य पदार्थ उपलब्ध हैं, तो पक्षी के दबाव का एक हिस्सा ऐसे खाद्य पदार्थों में स्थानांतरित हो सकता है, जो पसंदीदा फसल के कुल नुकसान को कम करेगा।
- गैर-घातक तरीकों में निवास स्थान में हेरफेर, पश्चाताप का उपयोग और कीट पक्षी प्रजातियों के लिए वैकल्पिक भोजन का प्रावधान शामिल है।

निवास स्थान का हेरफेर :

- पक्षियों के पसंदीदा आवासों के निकट फसलों में पक्षी की क्षति अधिक होती है।
- आवास संबंधी हेरफेर में हानिकारक पक्षियों के पसंदीदा आवासों से रोस्टिंग, घोंसले के शिकार और खिलाने वाली जगहों या भोजन और आश्रय को शामिल करना शामिल है।
- यह विचार इन आवासों को पक्षियों के लिए कम आकर्षक बनाने के लिए है ताकि आस-पास की फसलों को नुकसान कम हो सके।

विकर्षक :

- पदार्थ और उपकरण जो कीटों की प्रजातियों का कारण बनते हैं उन्हें क्षीण तथा स्वादिष्ट सामग्रियों को रिपेलेंट कहा जाता है।
- पक्षी घृणित में कई प्रकार शामिल हैं। दृश्य, श्रवण, रासायनिक संयंत्र-आधारित और भौतिक।

डरावने दृश्य

- भारत में युगों से डरावने कौवे जैसे दृश्य रिपेलेंट का उपयोग किया जाता रहा है।
- अब तक ज्ञात सबसे आशाजनक दृश्य पक्षी विकर्षक प्रतिबिंबित टेप है।
- यह एक पॉली प्रोपाइलीन मेटैलिक शाइनिंग टेप (11 मि.मी. चौड़ा, 0.025 मि.मी. मोटा, एक तरफ लाल और दूसरी चांदी के साथ) होता है, जो सूरज की रोशनी को चमकता हुआ प्रभाव दिखाता है और हवा में एक गुनगुनाहट पैदा करता है, जिससे पक्षियों को डर लगता है।
- इसे ध्रुवों के बीच फैलाया जाता है (2-4 ट्विस्ट प्रति 30 मीटर लंबाई और पर्याप्त स्लैक को अनुमति देता है) 0.5-1.0 मीटर फसल के ऊपर, समानांतर पंक्तियों में, पंक्ति को पंक्ति से 3-5 मीटर की दूरी पर रखते हुए।

डरावनी ध्वनियां :

पक्षियों को पारंपरिक रूप से शोर-शराबे के साथ, पटाखे के साथ या ड्रम और खाली डिब्बे पीटकर पारंपरिक रूप से डराया गया है।

- भारत के कुछ हिस्सों में पक्षियों को डराने के लिए स्वचालित एसिटिलीन एक्सप्लोडर्स या बर्ड-स्कारिंग गन जो समय-समय पर ज़ोर से विस्फोट शोर पैदा करते हैं।
- सभी शोर पैदा करने वाले उपकरणों में एक प्रमुख ड्रा-बैक होता है यानी पक्षियों को उनकी आदत होती है।

रासायनिक घृणित :

- कई रसायन जब बीज ड्रेसिंग, स्प्रे या धूल के रूप में उपयोग किए जाते हैं, तो वे फसलों से पक्षियों को प्रभावी ढंग से पीछे हटा देते हैं, जिससे पक्षी क्षति कम हो जाती है।

वैकल्पिक भोजन :

व्यावसायिक फसलों के लिए पक्षी की क्षति का निर्धारण करने में वैकल्पिक भोजन की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण कारक है।

- आमतौर पर, एक डराने वाली तकनीक अधिक प्रभावी होती है, यदि पक्षी प्रजातियों को वैकल्पिक भोजन उपलब्ध हो, तो वे डर जाते हैं।
- पक्षी क्षति को कम करने में सर्वोत्तम परिणामों के लिए, विभिन्न प्रकारों का उपयोग करें, एक साथ तकनीक और नियंत्रण कार्यक्रम शुरू करें इससे पहले कि पक्षी फल खाने के आदी हों। ●

रामधन सिंह बीज फार्म – एक परिचय

✍ **पुनीत कुमार, राजेश कथवाल एवं अरविंद मलिक**
रामधन सिंह बीज फार्म
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

रामधन सिंह बीज फार्म का कार्यालय चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के गेट न. 3 के सामने फार्म रोड़ (लुदास रोड़) पर स्थित है और यह बीज फार्म विश्वविद्यालय से 18 कि.मी. की दूरी पर बीड़-बबरान गाँव के समीप 2877 एकड़ में फैला हुआ है। इस बीज प्रक्षेत्र में चार ब्लॉक हैं। इसके उत्तर में भेड़ प्रजनन केंद्र और पश्चिम में सरकारी पशुधन फार्म स्थित है। यह फार्म दक्षिण में सरकारी पशुधन फार्म और पूर्व में लाला लाजपतराय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय व बीड़-बबरान गाँव की कृषि भूमि से घिरा हुआ है। यह एन.एच. 52 पर स्थित है और एन.एच. 10 (दिल्ली-सिरसा) से 7 कि. मी. की दूरी पर है।

इस बीज प्रक्षेत्र का नाम भारतीय मूल के प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक राव बहादुर डॉ. रामधन सिंह के नाम पर पड़ा है। स्वर्गीय राव बहादुर डॉ. रामधन सिंह का गेंहू, चावल, जौ और दालों की उन्नत किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनका जन्म हरियाणा के रोहतक ज़िले के किलोई गांव में एक सामान्य किसान परिवार में 1 मई, 1891 को हुआ। वे पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लॉयलपुर में 1909 में पहले बैच के छात्र थे। 1912 में उन्होने एग्रीकल्चर ऑफ लाइसैंस्टइन एग्रीकल्चर का डिप्लोमा प्राप्त किया। उन्होने 1914 से 1919 तक इम्पीरियल एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूसा के सर अलबर्ट हावर्ड के साथ काम किया। इसके साथ-साथ पटना विश्वविद्यालय से 1919 में विज्ञान की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद वे कैम्ब्रिज चले गए। उन्होने वहाँ से नेचुरल साईस में एम.ए. की डिग्री प्राप्त की। 1926 में उन्हौंने पंजाब गर्वनमैंट सर्विसिज़ में बतौर चारा विशेशज्ञ के रूप में नौकरी की।

1933-34 में डॉ. रामधन सिंह ने गेंहू की किस्में सी-518 व सी-591 को विकसित व रिलीज़ किया। सी-591 चपाती बनाने के लिए काफी मशहूर रही। नई संकर किस्में जैसे सी-228 (सन् 1940 में), सी-217 (सन् 1944 में), सी-250 (सन् 1944 में), सी-253 (सन् 1948 में), सी-281 (सन् 1955 में), सी-273 (सन् 1957 में) और सी-285 (सन् 1960 में) डॉ. रामधन सिंह ने विकसित की है।

इस फार्म की 1550 एकड़ भूमि कृषि योग्य है तथा 1350 एकड़ भूमि कृषि योग्य नहीं है। इस बीज प्रक्षेत्र में 50 एकड़ भूमि में आंवला, अमरूद व देशी बेर के बागों को लगाया है जो विविधिकरण योजना के अन्तर्गत् स्थापित किया गया है। रामधन सिंह बीज फार्म की सीमा लगभग 20 कि.मी. लंबी है। खरीफ के मौसम में मुख्य रूप से मूंग, ग्वार, बाजरा, ढैंचा और रबी के मौसम में गेहूँ, जौ, राया/सरसों, जई और चने के प्रमाणित/टीएफएल श्रेणी के बीजों का उत्पादन किया जाता है।

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा रामधन सिंह बीज फार्म पर नए बीज प्रसंस्करण संयंत्र का उद्घाटन 7 दिसम्बर 2020 को किया गया। यह बीज प्रसंस्करण संयंत्र बीज प्रसंस्करण की नवीनतम् तकनीक पर आधारित है। यह बीज प्रसंस्करण स्वचालित है और इसकी बीज प्रसंस्करण क्षमता 30 क्विन्टल प्रति घन्टा है। यह संयंत्र बीज प्रसंस्करण प्रीक्लीनर, ग्रेडर, इनडैंट सिलैण्डर, ग्रेविटी सेपरेटर, एलीवेटर व बीज उपचारक जैसी नवीनतम मशीनों से लैस है और एकल समन्वित प्रणाली पर आधारित है। जिससे बीज प्रसंस्करण में बीज की गुणवत्ता बढ़ती है और इससे बिजली पर आने वाला खर्च कम होता है। इससे किसानों को बिजाई के लिए अधिक गुणवत्ता युक्त बीज उपलब्ध होगा तथा फसलों की पैदावार में बढ़ोत्तरी होगी।

इस फार्म का मुख्य उद्देश्य :

1. मुख्य फसलों और बागवानी फसलों का उच्च गुणवता का बीज व पौध उत्पादन करना।
2. फार्म को आधुनिक यंत्रीकित बीज फार्म के रूप में उभारना।

रामधन सिंह बीज फार्म का उन्नत पौध उत्पादन केन्द्र जोकि गेट न. 4 के समीप स्थित है में उच्च गुणवत्ता की सब्जियों, फलदार पौंधों व फूलों की पौध तैयार कर किसानों को उचित दरों पर उपलब्ध करवाई जाती है। फलदार पौधों में खरीफ के मौसम में जामून, फालसा, बेलगिरी व फूलों की पौध में मुख्यत: गेंदा, सब्जियों में घीया, करेला, तोरी व बैंगन की पौध उपलब्ध करवाई जाती हैं। रबी के मौसम में फलदार पौधों जैसे अमरूद, पपीता, अनार, नीबू, किन्नु, मालटा व आडू की विभिन्न किस्मों के पौधे तैयार किए जाते हैं। अमरूद की हिसार सफेदा किस्म किसानों में काफी प्रचलित है जिसकी बुकिंग जुलाई माह में किसानों का पंजीकरण फार्म भरवाकर की जाती है। सीज़नल फूलों में कैलेन्डूला, हेलीक्रीसम, कैन्डीटफ्ट, वरबेना व कार्नफ्लावर मुख्य हैं। सर्दी के मौसम में सब्जियों में मुख्यत: टमाटर, फूलगोभी, ब्रोकली, पत्तागोभी, घीया, करेला, तोरी, समर स्क्वैश, लैट्यूस, पारस्ले, सिलेरी, पकचोल, ब्रुसेल स्प्राउट, केल इत्यादि की पौध उपलब्ध रहती हैं। सब्जियों की पौध बिना मिट्टी के कोकोपीट में तैयार की जाती हैं। इस विधि से तैयार पौध स्वस्थ होती है व फल जल्दी व अधिक लगता है।

इस फार्म पर वर्ष में दो बार किसानों को बीज व्यवसाय संबंधित व उच्च गुणवत्ता का बीज उत्पादन करने हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है। ये ट्रेनिंग फरवरी और मार्च के माह में करवाई जाती है। इसके साथ-साथ बीज दिवस का आयोजन भी किया जाता है।

किसानों को बीज का विक्रय विश्वविद्यालय के गेट न. 3 के सामने फार्म रोड़ (लुदास रोड़) पर स्थित कार्यालय और विश्वविद्यालय के गेट नं. 4 पर स्थित किसान सेवा केन्द्र से किया जाता है। किसानों को सस्ती दरों पर उच्च गुणवत्ता का बीज विश्वविद्यालय के बिक्री काउंटरों के माध्यम से उपलब्ध करवाया जाता है। किसान भाई बीज की उपलब्धता की जानकारी इस फोन नं. 01662 – 255433/255434 से प्राप्त कर सकते हैं। ●

जैविक खेती में कीट प्रबंधन

✍ **एस. पी. यादव, बलबीर सिहं एवं सत्यजीत**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आजकल खेती साधारण से असाधारण हो चुकी है, जिसमें रसायनों का प्रयोग कीड़ों बीमारियों, खरपतवारों व बढ़वार के लिए अंधाधुंध हो रहा है। पैदावार बढ़ाने के लिए यह अन्धा तरीका बिल्कुल ही गलत है। इससे पर्यावरण व फसल पैदावार बिल्कुल ही हानिकारक हो चुके हैं। अत: आज जैविक खेती की सख्त आवश्यकता हो चुकी है। जैविक खेती से अभिप्राय ऐसी खेती से है जिसमें कृत्रिम अथवा रासायनिक खादों, रासायनिक जीवनाशकों व अन्य कृषि रसायनों जैसे पौधों की बढ़वार को प्रभावित करने वाले रसायन (हार्मोन) आदि का प्रयोग किए बगैर फसलें उगाई जाती हैं। जैविक विधि से उगाई गई फसलों के उत्पादों में आदर्श रूप से कृषि रसायनों के अवशेष, औद्योगिक व शहरी कचरे के अवशेष, परिरक्षण के लिए प्रयोग किए जाने वाले रसायनों आदि के अवशेष नहीं होने चाहिएं। जैविक खेती में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्राकृतिक स्रोतों से लिए जाते हैं तथा कीड़ों व बीमारियों की रोकथाम भी प्रकृति में पाए जाने वाले पौधों, जीवों अथवा उनसे प्राप्त किए गए उत्पादों से की जाती है। आवश्यक पोषण तत्वों की पूर्ति गोबर की खाद, हरी खाद व वर्मी कम्पोस्ट आदि के माध्यम से की जाती है।

कीट प्रबंधन उपाय

जैविक खेती में कीड़ों की रोकथाम समन्वित कीट प्रबंधन की तरह ही है जिसमें विभिन्न रसायनरहित उपायों को समायोजित किया जाता है। इनमें मुख्य रूप से निम्न उपाय शामिल हैं :

- कीट व रोगरोधी बीजों का प्रयोग ।
- कीट व रोग-ग्रसित भागों को तोड़ कर नष्ट करना ।
- उचित फसल - चक्र अपनाना ।
- गर्मी के मौसम में खेतों को गहरा जोत कर कुछ दिनों के लिए छोड़ना।
- बिजाई व कटाई के लिए उचित समय अपनाना।
- पौधों व कतारों के बीच उचित दूरी रखना ।
- परपोषी पौधों व खरपतवारों को नष्ट करना ।
- जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करना।
- कीडों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गंध प्रपंच व प्रकाश पिंडों का प्रयोग करना तथा मित्र जीवों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक पौधों को लगाना भी कीड़ों के नियंत्रण में सहयक है। ।

जैविक कीटनाशकों का प्रयोग

जैविक कीटनाशक सूक्ष्मजीवों, पौधों व अन्य जन्तुओं से प्राप्त किए जाते हैं :

सूक्ष्म जीवों से प्राप्त कीटनाशक : इनमें बैक्टीरिया, फफूंद, विषाणु, प्रोटोजोआ व कवक आदि शामिल हैं। इनमें सबसे चर्चित बैक्टीरिया बेसिलस थ्यूरिंजिएंसिस (बी.टी.) है जो अनेक हानिकारक पतंगों पर कारगर है। एक अन्य कीटनाशाक स्पाइनोसेड है जो भूमि में पाए जाने वाले एक बैक्टीरिया से प्राप्त की जाती है। यह कीटनाशक अमेरिकन सूंडी, बैंगन की फल छेदक सूंडी व कुछ अन्य सूंडियों के नियंत्रण के लिए बहुत कारगर है।

पौधों से प्राप्त कीटनाशक : अनेक पौधों में ऐसे तत्व पाए जाते हैं जिन्हें कीड़ों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए नीम से प्राप्त होने वाला तेल व अर्क/ काढ़ा अथवा खली कीड़ों के जीवन को मुख्यत: तीन प्रकार से प्रभावित करता है:

- नीम- युक्त पौधों को कीड़े कम खाना पसंद करते हैं।
- नीम- युक्त पौधों से कीड़े दूर भागते हैं।
- नीम- युक्त भोजन खाने से कीड़ों का सामान्य विकास नहीं हो पाता तथा वे प्राय: कुछ समय बाद मर जाते हैं।
- इस प्रकार नीम के प्रयोग से फसलों की अनेक प्रकार के कीड़ों से रक्षा हो जाती है, जैसे हानिकारक कीड़ों की सूंडियां, रस चूसने वाले कीड़े जैसे तेला व सफेद मक्खी, पत्ते खाने वाले कीड़े जैसे सैनिक कीट व टिड्डे, जड़ खाने वाले कीड़े जैसे दीमक व सफेद तट तथा फल मक्खियां आदि। नीम के अलावा कुछ अन्य पौधों के तेल अथवा अर्क/रस में भी कीड़ों को नियंत्रित करने की क्षमता है जैसे- आक, बकैन, लहसुन, करंज, तम्बाकू, धतूरा आदि।

मित्र जीवों का संरक्षण

अनेक प्रकार के पक्षी, मकड़ियां, कीट व अन्य जीव विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीड़ों को खाते हैं। अत: इन जीवों का संरक्षण करना बहुत आवश्यक है। मित्र जीवों के संरक्षण के लिए किसान भाई निम्न उपाय कर सकते हैं :

- अपने खेत के आसपास खाली पड़ी ज़मीन, बाड़, नालों, ट्यूबवेल पर छप्पर आदि के आसपास विभिन्न पौधे जैसे मक्का, लोबिया, ज्वार, तिल आदि की बिजाई कर दें। ऐसे पौधों पर मित्रकीट व मकड़ियां शरण लेते हैं।
- फसलों का कुछ क्षेत्र बिना कीटनाशक के छिड़काव के अवश्य रखें ताकि मित्रजीव उन पर सुरक्षित रह सकें।
- अन्य पौधों से मित्रजीव एकत्र कर अपने खेत में छोड़ें। इसके अलावा जैव नियंत्रण प्रयोगशालाओं से मित्रकीट प्राप्त कर अपने खेत में छोड़ें।
- गन्ने में पायरिल्ला के नियंत्रण के लिए एपीरिकेनिया परजीवी तथा गन्ना बेधक व कपास की सूंडियों की रोकथाम के लिए ट्राइकोग्रामा परजीवी खेत में छोडें।

इस प्रकार उपयुक्त उपाय अपनाकर कृषि रसायनों के बिना फसलों को हानिकारक कीड़ों से बचाया जा सकता है। ●

मानव स्वास्थ्य में सब्जियों का महत्व

करण सिंह सैनी, एस. के. धनखड़[1] एवं नरेंद्र गोयल
कृषि विज्ञान केंद्र, यमुनानगर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मानव पोषण में फल और सब्जियों का महत्व दुनिया भर में अच्छी तरह से जाना जाता है। सब्जियां मानव भोजन के सात बुनियादी घटकों के समृद्ध और तुलनात्मक रूप से सबसे सस्ते स्रोत हैं, जैसे कि, कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज तथा पानी आदि। पर्याप्त मात्रा में इनका सेवन करने से रुचिकर स्वाद, भूख में बढ़ोत्तरी तथा उचित मात्रा में फाइबर मिलता है। इसके अलावा, वे कई विशिष्ट रासायनिक पदार्थ प्रदान करते हैं, जो विकास, प्रजनन और अच्छे स्वास्थ्य के रखरखाव के लिए आवश्यक हैं, और कुछ अपक्षयी बीमारियों से बचाने में भी फायदेमंद हैं। संतुलित आहार तथा अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इनका होना आवश्यक है। मांस, पनीर तथा अन्य चर्बीयुक्त खाद्य पदार्थों के पाचन के समय उत्पन्न अम्ल को उदासीन करने के लिए भी इनका होना आवश्यक है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार प्रति व्यक्ति प्रति दिन 300 ग्राम सब्जियों का सेवन करना चाहिए। इनमें से 120 ग्राम पत्तेदार, 90 ग्राम जड़ों वाली और 90 ग्राम, अन्य सब्जियां आहार को संतुलित बनाने के लिए आवश्यक हैं।

सब्जियों में पाए जाने वाले पोषक तत्त्व आहार मूल्य के दृष्टिकोण से सब्जियां निम्नलिखित रूप से महत्वपूर्ण हैं :

खनिज तत्व : मानव शरीर के वृद्धि और विकास के लिए कम से कम दस खनिज तत्व, अर्थात् कैल्शियम आयरन, फास्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, सल्फर, क्लोरीन, आयोडीन और फ्लोरीन की आवश्यकता होती है। इन खनिज पदार्थों में कैल्शियम, लोहा, फास्फोरस की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है जो कि उचित मात्रा में सब्जियों के अलावा अन्य खाद्य पदार्थों में उपस्थित नहीं होते हैं, इन तीनों के अतिरिक्त आयोडीन व सोडियम की भी प्राप्ति होती है। इनकी मात्रा कम होने पर भी यह मनुष्य के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होती हैं। खनिज पदार्थों की उपस्थिति के कारण ही सब्जियों को दूध की तरह संरक्षित खाद्य पदार्थ कहा जाता है। इस प्रकार शाकाहारी भोजन में इनका विशेष महत्व है। खनिज तत्व निम्नलिखित तरीकों से आवश्यक पाए जाते हैं :

कैल्शियम : कैल्शियम संक्रामक अवरोध तथा स्वस्थ हड्डियों के लिए आवश्यक होता है। जिसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स तथा पिजन चेस्ट की बीमारी, बच्चों की वृद्धि रुकना, दांत खराब हो जाना, बच्चों के जन्म में कठिनाई होती है, यह सेम, पत्ता गोभी, गाजर, सलाद, प्याज़, पालक, मटर एवं टमाटर इत्यादि में उपलब्ध होता है हरी पत्तेदार सब्जियां भी अच्छी मात्रा में कैल्शियम की आपूर्ति करती हैं।

लौह : लोहा लाल रक्त कोशिकाओं के हीमोग्लोबिन में आवश्यक धातु है और श्वसन में ऊर्जा हस्तांतरण प्रणाली में भी महत्वपूर्ण है। यह शरीर में ऑक्सीजन का सबसे अच्छा वाहक है। इसकी कमी से एनीमिया, चम्मच के आकार के नाखून, बार-बार थकावट (थकान) और त्वचा का पीला पड़ना, आंख और मुंह/चेहरा खराब हो जाता है। हरी पत्तेदार सब्जियां आसानी से पोषण संबंधी एनीमिया का इलाज कर सकती हैं। अधिकांश लोहे को हरी पत्तेदार सब्जियों से लिया जा सकता है। यह पालक, लेट्यूस, गोभी, मटर, बीन्स और टमाटर से भी प्राप्त किया जा सकता है।

फास्फोरस : यह शरीर के सभी कार्यशील ऊतकों के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह हड्डियों और कोमल ऊतकों दोनों के कोशिका गुणन के लिए आवश्यक है। यह कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जिससे ऊर्जा उत्पन्न होती है और यह आलू, गाजर, टमाटर, ककड़ी, पालक, फूलगोभी और सलाद में पाया जाता है।

सोडियम, पोटेशियम और क्लोरीन : ये तत्व शरीर के रक्त और ऊतकों की प्रणाली का हिस्सा हैं और शरीर के तरल पदार्थ के परासरणी संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।

मैगनीशियम : यह रक्त और कंकाल के लिए महत्वपूर्ण है और ऊतक के नुकसान से हड्डियां भंगुर और नाजुक हो जाती हैं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह कैल्शियम के विनियमन में शामिल है, विटामिन डी के संश्लेषण में और हड्डियों की अखंडता बनाए रखने में सहायक है।

सल्फर : यह प्रोटीन में एक तत्त्व है, और एंजाइम प्रणाली में सक्रिय भूमिका निभाता है।

आयोडीन : यह थायराइड गतिविधियों के लिए आवश्यक है। शरीर में इसकी कमी से गोइटर रोग हो जाता है।

कॉपर : यह टायरोसिन गतिविधि के लिए आवश्यक है। शरीर में इसकी कमी लोहे की चयापचय को बाधित करता है, जिससे एनीमिया और हड्डियों की हानि होती है।

ज़िंक : यह कम से कम आठ एंजाइम प्रणाली का एक घटक है। यह हड्डी के चयापचय और रखरखाव और स्मृति को बढ़ाने में शामिल है।

कोबाल्ट : यह विटामिन बी-12 की गतिविधि के लिए आवश्यक है।

मोलिब्डेनम : यह एक एंजाइम जैंथिन ऑक्सीडेज़ में एक धातु आयन है।

मैंगनीज़ : यह कई एंजाइमी प्रतिक्रियाओं में एक सह-कारक है।

फ्लोरीन : यह दंत क्षय को रोकता है, इसकी अधिकता से दांतों की चमक कम हो जाती है और दांतों और हड्डियों के विकार हो जाते हैं।

सेलेनियम : उचित वृद्धि और प्रजनन के लिए सेलेनियम की आवश्यकता होती है, और यह थायराइड को सक्रिय रखने और कार्यों को ठीक रखने के लिए महत्वपूर्ण पाया गया है। इसके अलावा , यह एक शक्तिशाली एंटीऑक्सिडेंट है जो कोशिकाओं को ऑक्सीकरण बायप्रोडक्ट्स से बचाता है जिसे पेरोक्साइड के रूप में जाना जाता है। यह उचित विटामिन ई फंक्शन ग्लूटाथियोन पेरोक्सीडेज़ गतिविधि के लिए आवश्यक है। यह बताया गया है कि गर्भावस्था के दौरान सेलेनियम की कमी शिशुओं में सिस्टिक फाइब्रोसिस (मूत्राशय में समस्या) का कारण बनती है। सेलेनियम हृदय रोग से लड़ने में मदद करता है।

विटामिन के स्रोत में सब्जियां: विटामिन एक या अन्य सब्जियों में कम या अधिक मौजूद होते हैं। दो प्रकार के विटामिन हैं, पानी में घुलनशील और वसा में घुलनशील। विटामिन ए, डी, ई और के वसा घुलनशील हैं और विटामिन बी-1, बी-2, बी-3, बी-9, बी-6, बी-12 और विटामिन-सी पानी में घुलनशील हैं। शरीर केवल वसा में घुलनशील विटामिन को संग्रहीत करता है और उनकी आवश्यकता के रूप में उपयोग करता है। हालांकि शरीर पानी में घुलनशील विटामिन को भरपूर मात्रा में संग्रहीत नहीं करता है। वसा में

[1]सब्जी विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

घुलनशील विटामिन शरीर की कोशिकाओं में जमा हो जाते हैं और पानी में घुलनशील विटामिनों की तरह आसानी से बाहर नहीं निकलते हैं। हालांकि पर्याप्त मात्रा में इसकी आवश्यकता होती है। यदि आप बहुत अधिक वसा में घुलनशील विटामिन लेते हैं, तो यह विषाक्त हो सकते हैं।

कार्बोहाइड्रेट के स्रोत में सब्जियां : सब्जियां में विशेष रूप से आलू, शकरकंद, मटर और बीन्स के सूखे बीज कैलोरी (ऊर्जा भोजन) के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। पौधों में पोषण महत्व के मुख्य कार्बोहाइड्रेट स्टार्च और शूगर काफी हद तक सुक्रोज़, ग्लूकोज़ और फ्रुक्टोज़ हैं। रसीली जड़ों वाली और कंद वाली सब्जियां कार्बोहाइड्रेट का समृद्ध स्रोत हैं इसमें $C(H_2O)$ के अनुपात में कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन होते हैं।

स्थूल खाद्य (फाइबर) के रूप में सब्जियां : खाद्य फाइबर सेल्यूलोज़ ग्लूकोज़ का बहुलक है, ऊर्जा के लिए मानव द्वारा उपयोग नहीं किया जाता है। कुछ जानवर विशेष रूप से जुगाली करने वाले अपने पाचन तंत्र में एक विशेष प्रकार की वनस्पतियों की उपस्थिति के कारण उपयोग कर सकते हैं। फाइबर सेल्यूलोज़, हेमी-सेल्यूलोज़, पैंटोसंस, पेक्टिन, पॉलीसेकेराइड्स और लिग्निन के मिश्रण के घटक हैं जो पौधों के खाद्य पदार्थों की बनावट को प्रभावित करते हैं। फाइबर को पाचन में और बाउल गति के नियमन में महत्वपूर्ण माना जाता है। सब्जियां स्थूल खाद्य प्रदान करती हैं, जो पाचन में सहायक होती हैं और कब्ज़ से बचाती हैं। पालक, लेट्यूस, गोभी और विभिन्न भारतीय सागों में उच्च पानी की मात्रा और सेल्यूलोज़ या फाइबर के उच्च प्रतिशत की विशेषता होती है, इस प्रकार, हरी सब्जियां खाने से, हम सेल्यूलोज़ और क्लोरोफिल खाते हैं जो पाचन में भी मदद करता है।

प्रोटीन के स्रोत में सब्जियां : बींस, मटर, ब्रोकली, फूलगोभी, शकरकंद, पत्ते वाली सब्जियां और विशेष रुप से सरसों कुल वाली सब्जियां प्रोटीन और अमीनो अम्ल से भरपूर वनस्पति प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जो आंतों के ट्रैक में पच जाता है और अमीनो एसिड में टूट जाता है। पौधे के प्रोटीन के उचित चयन और संयोजन से, मानव शरीर द्वारा आवश्यक अमीनो एसिड की आवश्यक आपूर्ति प्राप्त करना संभव है। आवश्यक अमीनो एसिड वे हैं जिन्हें मानव शरीर स्वयं संश्लेषित नहीं कर सकता है, और पौधे और पशु प्रोटीन से प्राप्त किए जाते हैं। प्रोटीन का मुख्य कार्य शरीर की कोशिका के निर्माण खंड के रूप में कार्य करना है। 36 अमीनो एसिड स्वाभाविक रूप से पाए जाते हैं, और इनमें से 22 अमीनो एसिड प्रोटीन के निर्माण इकाई का हिस्सा हैं। इनमें से, 8 आदमी में आवश्यक हैं। इसके अलावा, युवा वयस्क महिलाओं को सिस्टीन और टाइरोसिन की आवश्यकता होती है जबकि शिशुओं को पूरक हिस्टैडिन की आवश्यकता होती है। छह महीने से 6 साल के बीच के शिशुओं और बच्चों में प्रोटीन की कमी से मस्तिष्क की अपूरणीय क्षति हो सकती है।।

क्षारीय के स्रोत में सब्जियां : मानव शरीर के ऊतकों की रासायनिक प्रकृति क्षारीय होती है और अच्छे स्वास्थ्य के लिए शरीर में उचित क्षारीय आरक्षित रखना आवश्यक है, सब्जियां मूल रूप से क्षारीय प्रकृति की होती हैं और जो मांस, अंडा, पनीर जैसे प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों की हानिकारक क्रिया का प्रतिकार करने के लिए पर्याप्त आपूर्ति करती हैं और वसा, जो शरीर की आरक्षित क्षारीय प्रकृति में विघ्न डालता है।

दूध के स्रोत में सब्जियां : सब्जियां से दूध भी निकाला जा सकता है। इस प्रकार, दूध के निर्माण के लिए मटर की फली, गोभी की बाहरी पत्तियों का भी प्रयोग किया जा सकता है और इस उद्देश्य के लिए सोयाबीन का उपयोग किया जा रहा है। ●

चने में फली छेदक कीट प्रबंधन

बजरंग लाल शर्मा, अनिल एवं ऋतु भाल
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

शुष्क क्षेत्रों या कम पानी वाले इलाकों में चना रबी में बोया जाने वाला प्रमुख दलहनी अनाज है। भारतीय खानपान में चने को अंकुरित करके दाल के रूप में या बेसन के रूप में प्रयोग किया जाता है। चना का प्रयोग डायबिटीज़ मधुमेह के रोगियों के लिए काफी फायदेमंद होता है क्योंकि इसमें घुलनशील फाइबर प्रोटीन और लौह तत्त्व अधिक होता है। दलहनी फसल होने के कारण चना वायुमंडल की नाइट्रोजन को अपनी जड़ों में उपलब्ध जीवाणुओं द्वारा स्थिर कर पौधों को उपलब्ध कराता है एवं ज़मीन में भी नाइट्रोजन स्थिर करता है।

चने की फसल में अनेक प्रकार के कीट फसल की बिजाई से लेकर कटाई तक भारी मात्रा में हानि पहुंचाते हैं, जिनका उचित समय पर नियंत्रण करना अति आवश्यक है- इनमें फली छेदक कीट प्रमुख है।

इस कीट का प्रकोप फली आने पर अधिक होता है। इसकी सूंडी फली के अंदर घुसकर उसमें बन रहे हरे दाने/बीज को खाकर नष्ट कर देती है। इस कीड़े की एक सूंडी अपने जीवन काल में लगभग 30- 40 फलियां खा जाती है। इसकी सुंडी शुरू में हरी पत्तियों को खाकर हानि पहुंचाती है। यदि इसका नियंत्रण नहीं करें या प्रकोप अधिक हो तो 70-75% पैदावार में कमी आ सकती है।

प्रबंधन

400 मिलीलीटर क्विनलफॉस, 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एम. एल. या 80 मिलीलीटर फेनवेलरेट या 20 ई.सी. या 125 मिलीलीटर साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मिलीमीटर डेकामैथरिन 2.8 ई.सी. का 100 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें या 150 मिली नोवालूरान रिमोन 10 ई.सी. को 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें तथा आवश्यकता होने पर 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

- ❑ एक एकड़ में पांच फिरोमोन ट्रैप लगाएं जो कि फली छेदक सूंडी में प्रौढ़ को आकर्षित करती है।
- ❑ दस लकड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से पक्षियों में बैठने के लिए खेत में लकड़ी लगाएं।
- ❑ सौ दिन की फसल होने पर ऊपर की पत्तियों को तोड़ देने से अंडे नष्ट हो जाते हैं।
- ❑ ट्राईकोग्रामा क्लॉनिश 20 हज़ार प्रति एकड़ के हिसाब से एक सप्ताह के अंतर पर 3-4 बार छोड़ें।
- ❑ प्रकाश प्रपंच Light trap फली छेदक प्रौढ़ को आकर्षित करने के लिए खेत में लगाएं।
- ❑ बड़ी सूण्डियों को हाथ से नष्ट करें।
- ❑ खेत के आसपास साफ सफाई रखें। ●

फलों एवं सब्जियों की संरक्षित खेती – लाभदायक व्यवसाय

✍ **मनेन्द्र सिंह, छतरपाल महला एवं सुमित देसवाल**
फल एवं सब्जी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

संरक्षित बागवानी में पौध एवं प्रजाति की प्रकृति के अनुसार इसके चारों और सूक्ष्म जलवायु को आंशिक व पूरी तरह नियंत्रित कर पौध वृद्धि को वातावरण के लिए तैयार किया जाता है। संरक्षित बागवानी काश्तकारी, ग्रीनहाऊस गैस प्रभाव वाले सिद्धांत पर आधारित है। इसमें ग्रीनहाऊस को पारदर्शी शीट से ढका जाता है, जिसमें सूर्य की रोशनी अंदर आती है और इसे पौधे अवशोषित कर अधिक लंबी वेवलेंथ के प्रकाश को वापिस छोड़ देते हैं। यह बाहर पुनः वापिस नहीं जा पाती है। इस प्रकार अंदर का तापमान बढ़ जाता है और सर्दी में सब्जी की अच्छी खेती होती है। शीतोष्ण प्रदेशों, जहां वर्षभर तापमान कम होता है, वहां इस पद्धति द्वारा करना सही नहीं है। आजकल संरक्षित बागवानी का प्रचलन बड़ी-बड़ी कम्पनियों द्वारा सब्जी एवं फल की फुटकर बिक्री करने के कारण भी बढ़ रहा है। इन कम्पनियों के साथ अनुबंध कर किसान, समूह या सोसायटी बनाकर, फलों एवं सब्जियों की संरक्षित खेती कर सकते हैं। संरक्षित बागवानी के लिए सरकार द्वारा ग्रीनहाऊस के निर्माण के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है। गर्मी में यदि तापमान में बढ़ोत्तरी हो जाए तो वायुसंचार और कूलिंग पैड का प्रयोग कर तापमान का नियंत्रण किया जा सकता है। इटली और दक्षिण अफ्रीका से आयात के मुकाबले के लिए सुरक्षित ढांचे में फलों की खेती 1960 में प्रारंभ की गई और आज तक यह तकनीक व्यापक स्तर पर प्रयोग में है। ग्रीनहाऊस में खेती का, निर्यात गुणवत्ता के फलों एवं सब्जियों का उत्पादन संभव है। संरक्षित बागवानी द्वारा ही जापान अपने देश में आयात होने वाले फलों की मात्रा को कम कर पाया है।

संरक्षित बागवानी के प्रमुख पहलू :

1. जहां संरक्षित बागवानी करनी है, वहां के वातावरण की परिस्थिति।
2. संरक्षित खेती अपनाने वाले किसान के पास संसाधन की उपलब्धता।
3. संरक्षित खेती से उत्पादित फल एवं सब्जियों की खपत एवं बाज़ार में उपलब्धता।
4. उस स्थान की मृदा एवं जल की गुणवत्ता आदि।

संरक्षित बागवानी की आवश्यकता

- असामयिक आंधी एवं अधिक वर्षा, तापमान एवं आर्द्रता से फल सब्जियों की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव।
- बाहर अधिक कीट एवं रोगों का प्रकोप होता है, जबकि संरक्षित ढांचे में इसे नियंत्रण में रखना संभव।
- बेमौसमी फल एवं सब्जियों की उपलब्धता के लिए ।
- बेमौसमी एवं जल्दी तैयार होने वाली सब्जियों की पौध लगाकर अधिक लाभ लेने के लिए।
- वर्षभर बेमौसमी सब्जियों की काश्तकारी एवं उपलब्धता को बनाए रखने के लिए।
- उत्तम गुणवत्ता एवं निर्यात के फल एवं सब्जी का उत्पादन।

फलों एवं सब्जियों की संरक्षित बागवानी के लाभ :

- बाहर की अपेक्षा संरक्षित ढांचे में 3-5 गुणा अधिक उत्पादन।
- फल एवं सब्जी की उच्च गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादकता।
- संरक्षित क्षेत्र में 6-7 गुणा अधिक रोज़गार सृजन।
- फलों एवं सब्जियों की लंबी अवधि तक उपलब्धता।
- अधिक लाभ के लिए बेमौसमी फसल उत्पादन की पूर्ण संभावना।
- संरक्षित सब्जी एवं फल उत्पादन, एक सरल एवं लाभदायक तरीका।
- रोज़गार सृजन की व्यापक संभावना।
- संरक्षित खेती से शहर के किनारे रहने वाले लोगों के लिए रोज़गार की संभावना।
- कम क्षेत्रफल से अधिक लाभ एवं उत्पादन।
- उच्च गुणवत्ता एवं निर्यात योग्य फलों एवं सब्जियों का उत्पादन।

संरक्षित खेती के लिए उपयुक्त ढांचे

प्लास्टिक लो टनल : लो टनल पॉलीहाऊस में पौधे के आसपास सूक्ष्म वातावरण काफी बदल जाता है। जब धूप होती है तो दिन में तापमान 10-15° सेल्सियस बढ़ जाता है और सर्दी में फसल अच्छी होती है। लो टनल में स्ट्रॉबेरी एवं सब्जियों की अच्छी उपज होती है। इस तरह की संरचना की कीमत भी कम होती है। बरसात में सब्जी की पौध तैयार करने के लिए भी यह उपयोगी है।

कीट-अवरोधी नेट हाऊस में फल एवं सब्जी उत्पादन : इस प्रकार के ढांचे में पपीता, मिर्च, खीरा, बेबीकॉर्न, टमाटर, बैंगन एवं अन्य सब्जियां, जिनमें रस चूसने वाले कीड़े से वायरसजनित रोग फैलने का खतरा होता है, का उत्पादन किया जा सकता है। ढांचे को जी.आई. पाईप पर कीट अवरोधी नाइलॉन जाली लगाकर बनाया जाता है।

वाक-इन-टनल तकनीक द्वारा बेमौसमी सब्जी का उत्पादन : इस प्रकार के ढांचे की ऊंचाई 6-7 फीट तथा चौड़ाई 3-4 मीटर होती है। इस ढांचे में कम खर्च आता है। इस प्रकार की संरचना में सर्दी के मौसम में बेमौसमी सब्जी जैसे:- लौकी, खरबूजा, तरबूज, खीरा, चप्पनकद्दू की खेती की जाती है तथा बरसात में टमाटर, बैंगन की भी खेती की जाती है।

छायादार नेट हाऊस में गर्मी के मौसम में सब्जियों की खेती : छायादार संरचना में हरी धनिया, पालक, मूली, पुदीना, फूलगोभी, पत्तागोभी, सलाद, पपीता आदि फसलें उगाई जाती हैं। इसमें जी.आई. पाईप का ढांचा बनाकर छायादार नेट (50-70 प्रतिशत) लगाया जाता है।

वातानुकूलित ग्रीनहाऊस : वातानुकूलित ग्रीनहाऊस में सब्जी उत्पादन का खर्च अधिक होता है।

फलों की संरक्षित बागवानी : फलों एवं सब्जियों की उत्तम गुणवत्ता वाले रोगमुक्त पौधों का उत्पादन संरक्षित ढांचे में किया जा सकता है। आम, अमरूद, केला, जामुन, पपीता एवं लीची के पौधों को ग्रीनहाऊस में लगाने पर पौधे, शीघ्र कलम बांधने के लिए तैयार किए जा सकते हैं।इसमें उगाए

गए पौधों में फलत भी शीघ्र होता है और पौधे जल्दी तैयार हो जाते हैं। गर्मी में फल के पौधों को छायादार नेटहाऊस में लगाकर पौधे की वृद्धि को बरकरार रखा जा सकता है। पौधे, गर्मी में सूखने से बच जाते हैं और सिंचाई के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है। पौधों को गर्मी से बचाने के लिए 30-50 प्रतिशत वाली छायादार नेट उपयुक्त होती है। केले के सूक्ष्म प्रवर्धित (टिशू कल्चर) पौधों की हार्डनिंग के लिए 50-75 प्रतिशत का छायादार नेट उत्तम होता है। छायादार नेट में कलमी पौधे जल्दी तैयार हो जाते हैं और ये पौधे एक से डेढ़ वर्ष में बेचने योग्य हो जाते हैं।

भारत के विभिन्न भागों में वातानुकूलित संरक्षित ढांचा या प्लास्टिक टनल अथवा वाक इन टनल बनाकर काश्तकार, उच्च गुणवत्ता के टमाटर, बीजरहित खीरा, बेबीकार्न, टमाटर, बैंगन, मिर्च, शिमला मिर्च, मिर्च के संकर, कलमी बैंगन एवं टमाटर के पौधे उत्पादित कर अच्छा लाभ अर्जित करते हैं।

केले की खेती : ग्रीनहाऊस में गर्मी में तापमान बाहर की तुलना में काफी नीचे चला जाता है और ओवरहेड कूलिंग के प्रयोग द्वारा 18 प्रतिशतअधिक आर्द्रता दर्ज की गयी, जो केले की वृद्धि के लिए भी उपलब्ध होती है। संरक्षित ढांचे में केले उगाने से पौधे की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने के साथ-साथ कुल पत्ती का क्षेत्रफल (28.2) बाहर (20.8) की अपेक्षा कम दर्ज किया गया। बाहर पत्ती का क्षरण अधिक रहा और अंदर कम पत्ती आयी, परंतु क्षरण कम रहा। संरक्षित ढांचे में उगने पर केले में फल की बढ़त अधिक होने के साथ-साथ 10 प्रतिशत अधिक फल और 37 प्रतिशत अधिक उपज दर्ज की गई।

अंगूर : अंगूर को संरक्षित ढांचे में उगाने पर फीनोलोजिकल पुष्पन अवस्था शीघ्र प्रारंभ हुई और पूर्ण पुष्पन 15 दिनों पूर्व दर्ज किया गया। अंगूर में अधिक फल वृद्धि, गुच्छा अधिक लंबा, कुल घुलनशील ठोस 24.1 से 25.4 डिग्री ब्रिक्स, जबकि बाहर 17.9-21.8 डिग्री ब्रिक्स पाया गया।

पपीता : पपीते के पौधों में कई प्रकार के कवकजनित एवं वायरसजनित रोगों की समस्या पाई जाती है। अत: पपीते की खेती बंद ढांचे में कर कई प्रकार के रोगों एव कीटों से छुटकारा पाकर इसकी लाभदायक खेती की जा सकती है। पपीते को 40 प्रतिशत मेस साइज़ के नाइलॉन नेट वाले घर में उगाकर, पपीता रींगस्पॉ वायरस, सफेद मक्खी, पर्ण कुंचित रोग आदि से मुक्त खेती की जा सकती है। इससे अच्छा लाभ भी कमाया जा सकता है। स्वस्थ पौध उत्पादन के लिए जालीदार युक्त घर का प्रयोग किया जा सकता है। बेमौसम में बीज के जमने एवं पौध उत्पादन के लिए छायादार घर का प्रयोग किया जाता है।

संरक्षित ढांचे में नींबू के पौध का प्रवर्धन

नींबू पौधशाला एक अधिक लाभकारी व्यवसाय है, परंतु कलिका वाहक वायरस एवं मृदाजनित रोग व्यापक समस्याएं हैं। इसलिए संरक्षित ढांचे के अंदर पॉलीबैग में पौध का प्रवर्धन एक उत्तम एवं टिकाऊ विकल्प है। नींबू में ट्रिस्टेजा, इक्जोकार्टिस और रिंगस्पॉट वायरस जनित रोग हैं।

नींबू में ग्रीनिंग एवं रिंगस्पॉट रोग एक मक्खी द्वारा फैलाया जाता है, जो सर्वाधिक नुकसान पहुंचाती है। अत: मूलवृंत एवं सांकुर पौध का रोपण संरक्षित ढांचे के अंदर किया जाता है। नेट हाऊस के अंदर मात्र वृक्ष लगा कर इस रोग से बचा जा सकता है। इसके लिए 40 मेस साइज का नेट उपयुक्त होता है। पौधों को कंटेनर में पैदा करने एवं कलिका एवं कलम बंधन की अवधि बढ़ाने और अधिक सर्दी-गर्मी में पौध प्रवर्धन एवं पौध की विपरीत मौसम में वृद्धि के लिए छायादार नेट का प्रयोग किया जाता है।

संरक्षित ढांचे में फल पौधों का उत्पादन

ड्रैगन फल : ड्रैगन फल की खेती भारत में धीरे-धीरे प्रचलित हो रही है। इसकी खेती भी कीटरोधी नेट हाऊस में की जाने लगी है।

स्ट्रॉबेरी : यह शीघ्र तैयार होने वाला सरस फल है। इस फल की खेती परिनगरीय क्षेत्रों में वातानुकूलित ग्रीनहाऊस में बड़े पैमाने पर की जाती है। किसान इससे अधिक लाभ कमा रहे हैं। अत: आज की बदलती जलवायु, मांग-आपूर्ति में अंतर, उत्तम गुणवत्ता के फलों एवं सब्जियों की मांग, गांवों की आबादी का शहरों की तरफ पलायन तथा लोगों की अधिक क्रय क्षमता को देखते हुए, संरक्षित बागवानी किसानों की आय बढ़ाने तथा रोज़गार पैदा करने का उत्तम विकल्प है। इतना ही नहीं संरक्षित बागवानी में परोक्ष एवं अपरोक्ष अधिक रोज़गार सृजन की संभावनाएं होती हैं। ●

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 6 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+फंजीसाइड्स+ हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 31 दिसम्बर 2020 से बन्द कर दिया जाए।

31 दिसम्बर, 2020 से प्रतिबंधित होने वाले कीटनाशक

1. **एलाक्लोर** (Alachlor)
2. **डाइक्लोर्वास** (Dichlorvos)
3. **फोरेट** (Phorate)
4. **फास्फोमिडान** (Phosphamidon)
5. **ट्राइज़ोफॉस** (Triazophos)
6. **ट्राइक्लोर्फोन** (Trichlorfon)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

फसल उत्पादन में निम्न गुणवत्ता वाले सिंचाई जल का प्रबंधन

✍ **सतेन्द्र कुमार, मुकेश कुमार जाट एवं कविता**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज हम सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के कारण कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सफल हो गये हैं। साथ ही देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है। गत् कई दशकों से सिंचाई जल के अत्यधिक दोहन से इसकी उपलब्धता निरन्तर घटती जा रही है। जो टिकाऊ फसलोत्पादन के लिए चिन्ता का विषय है। पानी की अधिकता, इसकी कमी, गुणवत्ता व उपलब्धता के आधार पर ही नई फसल उगाने व फसल चक्र अपनाने का निर्णय लिया जाता है। जल प्रबंधन की दिशा में भारत सरकार द्वारा उठाये गये कदम जैसे 'प्रति बूंद अधिक फसल' एक सुनियोजित व आवश्यक प्रयास है। सन् 2025 में हमारी खाद्यान्न की आवश्यकता 30 करोड़ टन के लगभग आंकी गयी है। इसे पूरा करने के लिए हमें सीमित संसाधनों मुख्यत: मृदा और जल का विवेकपूर्ण प्रयोग करना होगा। देश में भूमिगत जल का स्तर लगातार कम हो रहा है। साथ ही बारिश के पानी का उचित तरीके से संरक्षण नहीं हो पा रहा है।

सिंचाई जल की गुणवत्ता : सिंचाई जल जिस स्थान से होकर बहता है। वहां की भूमि में उपस्थित घुलनशील लवणों के कुछ भाग को अपने में घोल लेता है। कुछ कुओं से भी लवणयुक्त पानी निकलता है। सिंचाई का पानी जहां तक संभव हो, लवणों से मुक्त होना चाहिए। सिंचाई जल के 1000 भाग पानी में एक भाग घुलनशील लवण होने तक पानी प्राय: अच्छा माना जाता है। पानी में 0.1 प्रतिशत से अधिक लवण होने पर वह पौधों के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

सिंचाई जल की गुणवत्ता के मानक

पानी की किस्में	ईसी (माइको सोमन प्रति सैं.मी.)	एसएआर	आरएससी (मिली तुल्य प्रति लीटर)
1. उत्तम पानी	2000 से कम	10 से कम	2.5 से कम
2. सामान्य पानी	2000 से 4000	10 से कम	2.5 से कम
3. सोडियम युक्त पानी	4000 से कम	10 से अधिक	2.5 से कम या अधिक
4. लवणीय पानी	4000 से 8000	10 से कम	2.5 से अधिक
5. सोडियम युक्त एवं खारा पानी	4000 से अधिक	10 से अधिक	2.5 से कम या अधिक

यदि घटिया गुणवत्ता वाला जल हो, तो हमें कुछ-कुछ मृदा-फसल प्रबंधन पद्धतियां अपनानी होंगी ताकि निम्न गुणवत्ता वाले जल का फसलों की पैदावार के लिए उपयोग किया जा सके। जिनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है (1) फसल प्रबंधन तकनीक, (2) मृदा प्रबंधन तकनीक, (3) जल प्रबंधन तकनीक, (4) उर्वरक और पोषण तकनीक, (5) पलवार का प्रयोग, (6) मेंढ़ों पर बुवाई।

(1) फसल प्रबंधन तकनीक : निम्न गुणवत्ता वाले जल का उपयोग करने के लिए लवण सहिष्णुता शक्ति वाली फसलों का चयन करना चाहिए।

(क) लवण संवेदनशील फसलें - दाल वाली फसलें, मूंगफली, धान, नींबू जाति के पेड़, आम, पपीता आदि।

(ख) लवण अर्द्धसहनशील फसलें : बरसीम, ज्वार, मक्का, मटर, फालसा, तम्बाकू, पत्ता गोभी, ब्रोकली, अनार, अमरूद।

(ग) लवण सहनशील फसलें: जौ, गेहूँ, सरसों, सैफ्लावर (कुसुम/सफोला), पालक, बाजरा, कपास, बेर।

बीज की मात्रा संस्तुत मात्रा से 10 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए। बुवाई से पूर्व बीज या नवजात पौधों को सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं कीटनाशक के घोल में उपचारित कर लेना चाहिए।

(2) मृदा प्रबंधन तकनीक : निम्न गुणवत्ता वाले सिंचाई जल का उपयोग केवल हल्की मृदा में किया जाना चाहिए। जहां तक हो सके, भूमि को समतल कर लेना चाहिए। भूमि का मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्वों की दृष्टि से विश्लेषण कर लेना चाहिए। बेहतर उर्वरता हेतु बुवाई करने से पहले खेत की अच्छी तरह जुताई कर लेनी चाहिए। वर्षा जल का अधिकतम मात्रा में मृदा में अवशोषण करने का प्रयास करना चाहिए।

(3) जल प्रबंधन तकनीक : मृदा में उसकी आवश्यकतानुसार जिप्सम डालना और उसे अच्छी तरह मिश्रित करना चाहिए। जल निकास प्रणाली भी उपयुक्त होनी चाहिए। फसल के विकास के लिए पहली सिंचाई बढ़िया गुणवत्ता वाले जल से करनी चाहिए। सिंचाई की बार्डर अथवा कूंड प्रणाली की तुलना में सिंचाई की ड्रिप विधि को अधिक महत्व दिया जाता है।

(4) उर्वरक और पोषण तकनीक : सोडियम युक्त जल से सिंचाई वाले क्षेत्र में यूरिया की तुलना में नाईट्रोजन के लिए अमोनियम सल्फेट बेहतर होता है। सुपर फास्फेट जैसे जल में घुल जाने वाले फास्फेट स्रोतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सिंचाई में खारे जल का उपयोग करते समय विशेष रूप से तिलहन और तम्बाकू की फसलों में पोटेशियम सल्फेट अच्छा रहता है।

(5) पलवार का प्रयोग : मध्यम खारे पानी से सिंचाई करते समय मल्च का प्रयोग कर सकते हैं। मल्च के लिए प्लास्टिक शीट या सूखे पत्ते व भूसा आदि प्रयोग कर सकते हैं। यदि किसान के पास अच्छी गुणवत्ता वाला सिंचाई जल है, तो उसे खारे पानी के साथ मिश्रित करके भी प्रयोग कर सकते हैं।

(6) मेंढ़ों पर बुवाई : पौधों को मेंढ़ों के ऊपर लगाकर भी खारे पानी की समस्या से बचा जा सकता है। जहाँ तक हो सके फसलों की बुवाई मेंढ़ों पर करनी चाहिए। मेंढ़ें पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर बनानी चाहिएं। पौधों की बुवाई/रोपाई उत्तर दिशा में मेंढ़ के मध्य में करें। यदि मेंढ़ बनाना सम्भव न हो, तो बुवाई छोटी-छोटी समतल क्यारी बनाकर करें। क्यारियों का एक किनारा सिंचाई नाली से जुड़ा हो तथा दूसरा किनारा जल निकास नाली से जुड़ा होना चाहिए। जिससे आवश्यकता से अधिक पानी खेत से जल निकास नाली द्वारा बाहर निकाला जा सके। मेंढ़ों पर बुवाई करने से पौधों की जड़ें कम से कम हानिकारक लवणों के सम्पर्क में आती हैं।

अधिक लवण घुले होने पर सिंचाई का पानी फसलों को ही हानि नहीं पहुंचाता, अपितु उस भूमि को भी खराब कर सकता है, जिससे उस पानी से सिंचाई करते हैं। अत: इस सम्बंध में सावधानी रखने की आवश्यकता है। यदि अच्छी गुणवत्ता का जल उपयोग नहीं किया जाए, तो भूमि क्षारीय या लवणीय हो जाएगी अथवा उनकी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा नष्ट हो जाने से फसल उगाने के लिए अनुपयुक्त हो जायेगी। सिंचाई जल के लिए ऐसे पानी का चुनाव करें, जिसका पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के मध्य हो। ●

मूंग की जैविक खेती

आर. डी. जाट, प्रगति यादव एवं किशोर चन्द कुम्हार[1]
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंग हरियाणा की खरीफ मौसम की मुख्य दलहनी फसल है जिसे शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। कम अवधि की फसल होने के कारण मूंग की फसल ग्रीष्मकाल में भी लगाई जाती है। मूंग उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का सबसे बेहतरीन एवं सस्ता स्रोत है। मूंग के दानों में प्रोटीन की मात्रा लगभग 25 प्रतिशत होती है। आमतौर पर यह फसल कम उपजाऊ भूमि में सीमित संसाधनों के साथ बोई जाती है जिसके कारण इसकी उपज बहुत कम होती है। यदि वर्तमान किस्मों के साथ खेती के उन्नत तरीके अपनाएं तो फसल की औसल पैदावार में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। मूंग की जड़ग्रथियां वायुमण्डलीय नत्रजन का संश्लेषण करने की क्षमता रखती हैं जिससे मृदा में नत्रजन की मात्रा बढ़ती है और मृदा की उर्वरता में वृद्धि होती है। मूंग की फसल हरी खाद और चारे के रूप में भी प्रयोग की जाती है। मूंग की फसल मिट्टी के कटाव को कम करती है।

जैविक खेती परंपरागत कृषि का वह वैज्ञानिक तरीका है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारों की जगह जैविक खाद एवं जैव नाशकों का प्रयोग किया जाता है जिससे प्रकृति के साथ सामंजस्य बना रहता है। इसका मुख्य उद्देश्य स्थानीय संसाधनों के उपयोग एवं प्रक्षेत्र अवशेष प्रबंधन से मित्र जीवों की सहायता कर कम लागत में अधिक व स्थिर उत्पादन प्राप्त करना होता है।

उचित किस्में : एम एच-421, बसंती, एमएच 318, मुस्कान, सत्या

भूमि व खेत की तैयारी: मूंग की फसल सभी तरह की मिट्टी में उगाई जा सकती है परंतु कल्लर और खारी मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नहीं है। अच्छे जल निकास वाली ढीली और हवादार हल्की दोमट से लेकर दोमट मिट्टी इसके लिए उचित होती है। भूमि संरक्षित हानिकारक कीट, जीवाणु एवं अन्य जंतुओं की रोकथाम हेतु ग्रीष्मकाल जुताई मिट्टी पलट हल से करें। खेत तैयार करने के लिए दोहरी जुताई करें और सुहागा लगाएं। इससे खेत समतल होगा व उसमें खरपतवार और ढेले नहीं रहेंगे। अधिक बीज अंकुरण के लिए मृदा में उचित नमी बनाए रखें।

बिजाई : मूंग की बिजाई मानसून की बारिश के साथ जुलाई के पहले पखवाड़े में कर देनी चाहिए। यदि संभव न हो तो जुलाई के तीसरे सप्ताह तक बुवाई कर सकते हैं। अगेती बोई गई फसल में बढ़वार अधिक एवं पैदावार कम होती है। इसी प्रकार पछेती फसल में पीले मौजेक विषाणु का संक्रमण अधिक होता है। इसलिए बिजाई उचित समय पर उत्तम बीज से करें। मूंग के लिए 6-8 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ पर्याप्त होता है। कतारों के बीच की दूरी सिंचित क्षेत्रों में 30 सैंटीमीटर और असिंचित क्षेत्रों में 45 सैंटीमीटर रखें। पौधों के बीच 10 सैंटीमीटर का फासला रखकर छंटाई करें ताकि पौधों के चारों ओर सूक्ष्म वातावरण उचित बना रहे और उपज में बढ़ोत्तरी हो।

[1]पादप रोग विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

बीज उपचार: मूंग की फसल से अधिक उपज लेने के लिए बीज को राइजोबियम, फास्फेटसैंल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) से उपचारित करें। राइजोबियम मूंग की जडर्गंथियों को नत्रजन संश्लेषण में सहायता करता है और नत्रजन की उपलब्धता बढ़ाता है। पी.एस.बी. मृदा में मौजूद फास्फोरस को फसल के लिए सुलभ बनाता है/उपलब्ध कराता है। मृदा एवं बीज जनित रोगों की रोकथाम के लिए बीज को थाईरम (4ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करना चाहिए। यह रोगजनकों की वृद्धि को कम करता है और उन्हें मार कर पौधे की रोगरोधी क्षमता बढ़ाता है। इसी के साथ यह मृदा में मौजूद कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को बढ़ाकर जैव उर्वरक का काम करता है। सही तरीके से बीजोपचार करने से बीज अंकुरण बढ़ता है और मृदाजनित रोग नहीं लगते हैं।

बीजोपचार का तरीका : बीजोपचार करने के लिए 2 कप पानी में 50-60 ग्राम गुड घोलकर एक एकड़ के बीज पर डालें और अच्छी तरह मिला दें ताकि बीजों पर द्रव्य अच्छी तरह लग सके।

पोषक तत्वों का प्रबंधन/खाद : मूंग की फसल मे बिजाई के समय 6-8 किलोग्राम नत्रजन व 16 किलोग्राम फास्फोरस प्रति एकड डालने की सिफारिश की गई है।

नत्रजन संश्लेषण प्रक्रिया मूंग की बुवाई के 2 हफ्ते बाद शुरू होती है इसलिए खेत तैयार करते समय फसल में खाद डालना चाहिए ताकि पौधों में पोषक तत्वों की कमी न हो। कोशिश करें खाद का उपयोग मृदा परीक्षण रिपोर्ट के हिसाब से किया जाए।

- खाद के उपयोग से मृदा की गठन और जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है और मृदा में सभी प्रकार के पोषण तत्त्वों की प्रतिपूर्ति होती है। मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और गैस विनियम सरल हो जाता है।
- फसल अवशेषों को खेत की मिट्टी मे मिलाएं जिससे मृदा मे कार्बनिक पदार्थ एवं सूक्ष्म मित्रजीव संरक्षित रहें और मृदा के भौतिक-रासायनिक गुणों में वृद्धि हो।
- **स्रोत :** वर्मीकम्पोस्ट, फार्म यार्ड खाद (FYM), हरी खाद, कम्पोस्ट, जैव-उर्वरक, Oilcakes (तेल केक), फसल अवशेष, फसल चक्र।

सिंचाई प्रबंधन : मानसून सामान्य होने पर खरीफ मूंग में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यदि बढ़वार के समय खेत में उचित नमी न हो तो सिंचाई करें। खड़ा पानी मूंग की फसल को नुकसान करता है। अतः उचित जल निकासी प्रबंधन करें। भूमि आच्छादन से वाष्पीकरण कम होता है और मृदा की जलधारणा क्षमता बढ़ती है।

खरपतवार प्रबंधन : जैविक खेती में मूंग की उपज बढ़ाने के लिए सफल खरपतवार प्रबंधन बहुत आवश्यक होता है क्योंकि खरपतवार फसल के साथ प्रकाश, पोषक तत्वों, नमी और जगह के लिए स्पर्धा करते हैं और पौधे की बढ़वार पर असर डालते हैं। मूंग की फसल में दो निराई-गुड़ाई खरपतवारों की बढ़वार कम करने के लिए उपयुक्त होती है। पहली गुड़ाई बुवाई के 20 से 25 दिन बाद और दूसरी 30 से 35 दिन बाद करनी चाहिए।

उचित प्रबंधन के लिए खरपतवार बीजकोष को कम करने की कोशिश

करें। इसके लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें एवं खरपतवारों को फूल आने से पहले उखाड़कर नष्ट करें।

भूमि आच्छादन खरपतवारों की बढ़वार को रोकता है। इसके लिए फसल अवशेषों का प्रयोग करें।

पौधों को उचित दूरी पर लगाकर फसल में संतुलित पोषण और नमी बनाएं ताकि फसल स्वस्थ रहे क्योंकि अच्छी फसल एक बेहतरीन खरपतवार नाशक होती है।

कीट प्रबंधन: मूंग की फसल में मुख्यत: हरा तेला, सफेद मक्खी, बालों वाली सूण्डी एवं पत्ता छेदक कीट का प्रकोप होता है।

हरा तेला और सफेद मक्खी के प्रौढ़ और शिशु पत्तों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं जिससे पौधों की बढ़वार कम हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए खेत में पीले स्टिकी ट्रैप लगाएं और मित्र कीटों जैसे लेडीबर्ड बीटल, लेसविंग भृंग का संरक्षण करें।

बालों वाली सूण्डी पत्ते खाती हैं और बढ़वार को रोकती हैं। पत्ता छेदक पत्तों का भक्षण करते हुए उसमें छोटे-छोटे सुराख कर देते हैं जिससे पौधों में प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है। यह कीट पौधे पर सुबह और शाम अधिक सक्रिय रहता है और दोपहर में मिट्टी में छिप जाता है। इनकी रोकथाम के लिए लाइट ट्रैप लगाएं क्योंकि इनके प्रौढ़ रोशनी की तरफ आकर्षित होते हैं। पत्तों पर मौजूद अण्डों एवं सूण्डियों के समूह को पत्तों सहित तोड़कर मिट्टी में दबा दें या मिट्टी के तेल के घोल में डालकर नष्ट करें।

- ❖ फसल की कटाई के बाद गहरी जुताई करें जिससे मिट्टी में दबे कीटों के प्यूपा ऊपर आ जाएं जिन्हें पक्षियों और अन्य तरीकों/माध्यमों से निष्क्रिय किया जा सके। खेत के आसपास सफाई रखें और खरपतवारों को हटाएं ताकि कीटों के अण्डे नष्ट किए जा सकें।

  जैविक खेती प्रणाली में प्राकृतिक मैना, कौवा, बगुले और लाभकारी कीट मकड़ियां, सेंटीपीड्स, कैरीबिड बीटल शत्रुओं की कीट प्रबंधन में अहम भूमिका होती है। अत: इनके संरक्षण हेतु अनुकूल परिस्थिति प्रदान करें/बनाए रखें जैसे खेत के आसपास जैव विविधता बनाए रखना।

मुख्य बीमारियां/रोग प्रबंधन : मूंग की फसल में मुख्यत: पीला मोजैक और जड़ गलन की समस्या होती है।

❖ **पीला मोजैक :** यह रोग पीला मोजैक विषाणु के कारण होता है जिसका वाहक सफेद मक्खी होती है। सफेद मक्खी पत्तों से रस चूसते समय पौधे को संक्रमित करती है। इसकी रोकथाम के लिए रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें/मिट्टी में गहरा दबा दें और सफेद मक्खी का प्रबंधन करें।

❖ **जड़ गलन :** यह रोग मुख्यत: पिथियम, फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया जैसे रोगजनक कवकों के कारण होता है। यह रोग पौधे की जड़ गला देता है जिससे पौधा पीला पड़ जाता है और बढ़वार नहीं होती । इसकी रोकथाम के लिए ट्राइकोडर्मा जैसे जैव-कवकनाशक का प्रयोग बीजोपचार, मृदा शोधन एवं जड़ डुबकी के लिए करें। फसल चक्र में तीन साल तक बदलाव करें।

कटाई और चुगाई : फसल पकने के समय फलियां गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं और पत्तियां पीली हो जाती हैं। आवश्यकतानुसार फलियां 2-3 बार चुगनी/तोड़नी चाहिएं। फसल कटाई के 3-5 दिन बाद तक फसल को धूप में सूखने दें और फिर गहाई करें। ●

पौष्टिकता और स्वास्थ्य से भरपूर बेबी कॉर्न

✍ **सुमन, सोनू कुमार[1] एवं शोभित[2]**
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मक्का एक प्रमुख खाद्य फसल है जो मोटे अनाजों की श्रेणी में आता है। यह बहुत जल्दी उगने वाली तथा उच्च उपज देने वाली एक बहुमुखी फसल है। विकासशील देशों में इसे गरीबों का अनाज कहा जाता है। बेबी कॉर्न मक्का की एक प्रजाति होती है या यूं कहें कि यह मक्का का प्री मैच्योर भुट्टा होता है। बेबी कॉर्न का सबसे अधिक उत्पादन थाईलैंड और चीन में होता है। भारत में यह मेघालय, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश मे उगाया जाता है। कॉर्न की तरह बेबी कॉर्न भी एक स्वादिष्ट पौष्टिक आहार है जो धीरे-धीरे भारतीय आहार में अपनी जगह बनाता जा रहा है। इसकी गुणवत्ता कुछ मौसमी सब्जियों के बराबर या इनसे भी अधिक है। इसे कच्चा या पकाकर खाया जाता है। इसका इस्तेमाल मुख्य रूप से सूप, सलाद व सब्जी के रूप में किया जाता है। बेबी कॉर्न की प्रोसेसिंग द्वारा इसे लंबे समय तक संरक्षित किया जा सकता है। इसकी अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में बहुत मांग है। इससे कई प्रकार के मूल्य संवर्धित व्यंजन बनाए जा सकते हैं जैसे अचार, चटनी, पकौड़ी, भुजिया, रायता, खीर, मुरब्बा, बर्फी आदि।

बेबी कॉर्न न केवल पौष्टिक अपितु स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभदायक है। इसमें बहुत कम मात्रा में कैलोरी होती है। 100 ग्राम बेबी कॉर्न में केवल 26 कैलोरी होती हैं जो कि वज़न कम करने में सहायक है। पाचन की दृष्टि से भी यह एक अच्छा आहार है। इसमें फाइबर, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स तथा विटामिन ए, बी और ई भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें मौजूद फाइबर कब्ज़ को दूर करता है और कोलन कैंसर के खतरे को कम करता है तथा फाइबर ब्लड शूगर के स्तर को नियंत्रित करता है। इसलिए यह मधुमेह के रोगियों के लिए भी काफी उपयुक्त है। विटामिन बी और फॉलिक एसिड की अधिकता की वजह से यह गर्भवती स्त्री एवं शिशु के लिए सर्वोत्तम आहार है। इसमें बीटा कैरोटीन होता है जो आँख संबन्धित समस्याओं को घटाता है। विटामिन सी, बायोफ्लेवोनाइड, कैरोटेनायड की प्रचुरता से यह कॉलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करता है तथा धमनियों में रुकावट को सामाप्त कर हृदय में रक्त के प्रवाह में वृद्धि करता है। इसमें काफी मात्रा में खनिज लवण होते हैं जैसे फास्फोरस, मैग्नीशियम, आयरन, कॉपर आदि। फास्फोरस स्वस्थ हड्डियों के लिए आवश्यक होता है। ये आयरन का अच्छा स्रोत है जिससे यह एनीमिया (खून की कमी) को दूर करने में सहायक है। यह एंटीआक्सिडेंट से भरपूर है जो कि कैंसर के खतरे को घटाता है।

एक वर्ष मे बेबी कॉर्न की 3-4 फसल आसानी से ली जा सकती हैं। इस प्रकार बेबी कॉर्न का उत्पादन न सिर्फ आर्थिक लाभ अर्जित करने में मददगार साबित हो सकता हैं बल्कि पोषक तत्वों से भरपूर एवं अन्य गुणों से समाहित यह स्वास्थ्य के लिए वरदान साबित हो सकता है। ●

[1]भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]खाद्य प्रौद्योगिकी विभाग, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

अप्रैल मास के कृषि कार्य

फसलों में

गेहूं और जौ

गेहूं की बालों का रंग जब सुनहरा या ललाई लिए हो तो फसल को पकी समझें। ज़्यादा पकने से दाने झड़ने का डर रहता है। खेत में खड़े खरपतवार, सामान्यत: कनकी (मंडूसी), जंगली जई की कटाई पकने से 10-15 दिन पहले सावधानी से करके मुख्य फसल से अलग कर लें। इन फसलों की गहाई अच्छी तरह सूखने पर ही करें।

जिन खेतों में पत्तों पर कांगियारी का प्रकोप रहा हो उन खेतों के बीज को अगले वर्ष बिजाई के लिए प्रयोग में बिल्कुल भी न लाएं तथा रोगग्रस्त पौधों को जलाकर नष्ट कर दें।

थ्रैशर मशीन

थ्रैशर मशीन को समतल ज़मीन पर ही स्थापित करें ताकि चलते समय कम से कम कम्पन हो। मशीन को चलाने से पहले हाथ द्वारा एक चक्कर लगा कर देख लें कि कहीं रुकावट तो नहीं है। थ्रैशर मशीन के पहियों को ज़मीन में गाड़ कर खूंटियां लगा दें और आवश्यकता हो तो फ्रेम पर भार/वज़न आदि रखें। भूसे की निकासी हवा चलने की दिशा की ओर हो। थ्रैशर को सही चक्करों पर ही चलाएं। थ्रैशर सिलेंडर उसी दिशा में घूमना चाहिए जैसा कि निशान द्वारा दर्शाया गया हो वरना पट्टे क्रॉस करके इसकी दिशा ठीक करनी चाहिए ताकि थ्रैशर सही चक्करों पर ही चले।

घटिया किस्म का थ्रैशर कभी भी प्रयोग न करें। थके होने पर थ्रैशर पर काम न करें। नशे की हालत में भी थ्रैशर न चलाएं। खलिहान में हुक्का व बीड़ी-सिगरेट कदापि न पिएं। काम करते समय ढीले-ढाले कपड़े न पहनें। मंद रोशनी में काम न करें। रात को काम करते समय रोशनी का प्रबन्ध रखें। गीली फसल की गहाई न करें। ट्रैक्टर के धुआं निकलने वाली पाइप के ऊपर चिंगारी अवरोधक अवश्य लगाएं। बिजली के खंभों व तारों के नीचे कभी भी फसल का ढेर न रखें। कुछ पानी और रेत थ्रैशर के पास रखें ताकि आग लगने पर काबू पाया जा सके।

चना

जहां पर अंगमारी देखने में आई हो वहां रोगग्रस्त पौधों को अवश्य नष्ट कर दें। टाँट वाली सूंडी से फसल को बचाने हेतु मार्च मास में बताए गए कीटनाशकों में से किसी एक का छिड़काव करें।

गन्ना

गन्ने की बिजाई के लगभग 40 दिन बाद पहला पानी लगाएं। बत्तर आने पर गुड़ाई करें। यदि बिजाई के समय एट्राजीन नहीं डाल पाये हों तो पहली सिंचाई के बाद गोड़ाई करके 1.6 किग्रा. एट्राजीन-50 घु.पा. प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल में छिड़काव करें। इससे गन्ना फसल पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियन्त्रण करने के लिए 1.0 किग्रा. 2,4-डी (80 प्रतिशत सोडियम नमक) 250 लीटर पानी में बिजाई के 7-8 सप्ताह बाद प्रति एकड़ छिड़काव करें। यदि फसल में मोथा घास (डीला) की समस्या हो तो घास उगने पर 2,4-डी ईस्टर का 400 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि मोथा घास दोबारा उग जाए तो दवाई की इसी मात्रा का फसल में छिड़काव करें। 2,4-डी मोथा घास को ऊपर से ही नष्ट करती है। मोथा घास (डीला) की रोकथाम के लिए सैंम्प्रा (75 प्रतिशत हैलोसल्फ्युरान) का 36 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 35-45 दिन बाद (पहली सिंचाई के 2-3 दिन बाद) जब मोथा घास 3-5 दिन की हो तब फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें।

स्केल कीड़ा सोनीपत तथा फरीदाबाद ज़िलों के कुछ गांवों में गम्भीर रूप में आ गया है। इसके फैलाव को रोकने के लिए बीज ऐसी फसलों व क्षेत्रों से न लें जहां इस कीड़े का प्रकोप हो। कीड़ाग्रस्त क्षेत्रों से दूसरे क्षेत्र में गन्ना बिजाई के लिए नहीं ले जाना चाहिए। केवल स्वस्थ बीज बोएं एवं अच्छे जमाव के लिए बीज को 5-10 मिनट 250 ग्राम मैन्कोज़ेब दवा 100 लीटर पानी के घोल से उपचारित करें। काटने के बाद सभी पत्तियों व नए फुटाव को खेतों में नष्ट कर दें। कीटग्रस्त क्षेत्रों में एक से अधिक मोढ़ी फसलों में काली चींटी के नियंत्रण के लिए 400 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फरवरी व मार्च में बोई गन्ने की फसल में 45 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ डालें। गन्ने की मोढ़ी की फसल में अप्रैल के आखिर में 65 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ डालें।

कपास

अच्छी उपज लेने के लिए कपास की सामान्य बिजाई अगले मास में करें परंतु भिवानी, महेन्द्रगढ़ व सिरसा ज़िलों के ऐसे क्षेत्रों, जहां रेतीली मिट्टी व रेतीले

तकनीकी सहायता :

- सुनील कुमार ढाण्डा, सह निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- सुरेन्द्र सिंह, सहायक निदेशक (बागवानी)
- राकेश कुमार, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (पादप रोग)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

टिब्बे बनने की संभावना है, में कपास की बिजाई इस माह के पहले पखवाड़े में कर दें। केवल उन्नत किस्में ही बोएं। बीकानेरी नरमा जैसी उन्नत किस्मों एच एस 6, एच 1098, एच 1117, एच 1226, एच 1098, एच 1236, एच 1300 व संकर किस्म एच एच एच 223 व एच एच एच 287 बोने की सिफारिश की जाती है। देसी कपास की बिजाई के लिए एच डी-107, एच डी 123, एच डी 324, एच डी-432 व संकर किस्म ए ए एच-1 बोएं। इसके अतिरिक्त केवल अनुमोदित की गई बी. टी. संकर किस्में ही लगाएं।

कपास से बढ़िया फुटाव के लिए पूरे खेत की तैयारी सही ढ़ंग से करनी ज़रूरी है। अत: खेत की तैयारी इस मास के अंत में शुरू करें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 3-4 जुताइयां करके खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। कपास की बिजाई के समय खेत में बत्तर का होना ज़रूरी है। इसके लिए खेत में अच्छा पलेवा करें। गीले बत्तर में दो जुताइयां करके सुहागा लगाएं व खेत को एकसार कर लें। खेत में पौधों की सही संख्या के लिए बीज की सही मात्रा प्रयोग में लाएं। बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। एक एकड़ के लिए अमेरिकन कपास (नरमा) के लिए 6-8 किलोग्राम रोएं रहित बीज व 8-10 कि.ग्रा. रोएंदार बीज पर्याप्त होता है। देसी कपास के लिए लगभग 5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। ड्रिल द्वारा बीजने के लिए यदि रोएं उतारे बीज न मिलें तो 6 किलोग्राम प्रति एकड़ रोएंदार (साधारण) बीज को बोने से पहले बारीक मिट्टी, गोबर या राख में रगड़ लेना चाहिए जिससे ड्रिल में से बीज एकसार निकलें। बी. टी. संकर का 850 ग्राम बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। इसकी बिजाई कपास बीजने वाली एक खूड़ वाली ड्रिल से कतारों में करें। दो खूड़ों व पौधों का फासला लगभग 67.5-30 सैं.मी. रखें। ध्यान रहे कि बिजाई अच्छी नमी (आल) में की जाए व बीज 4-5 सैं.मी. की गहराई पर डालें। संकर कपास के लिए 1.2 से 1.5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ 67.5-60 सैं.मी. के फासले पर बीजें। संकर व बी.टी. कपास की बिजाई के लिए कतार से कतार की दूरी 67.5 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 सैं. मी. रखनी चाहिये या कतार से कतार की दूरी 100 सैं.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 45 सैं.मी. रखनी चाहिए।

अमेरिकन कपास (नरमा) की उन्नत किस्म, यदि गेहूं काटने के बाद बोनी है तो बिजाई के समय खेत में 38 किलोग्राम यूरिया व 75 किलोग्राम सुपरफास्फेट प्रति एकड़ बो दें और रेतीली ज़मीन में 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय अवश्य डालें। इतनी ही यूरिया खाद बाद में पौधों को छिद्दा करते समय डालें। पोटाश की कमी वाले खेतों में 20 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश बिजाई के समय अवश्य बिखेर दें। यदि कपास खाली पड़ी ज़मीन में बोनी है तो बिजाई के समय सुपरफास्फेट तथा पोटाश ही डालें। बाद में पौधे छिद्दा करते समय व फूल आते समय ऊपर बताई यूरिया की मात्रा दें। देसी कपास में 22 किलोग्राम प्रति एकड़ यूरिया खाद 45 दिन बाद डालें। 22 किलोग्राम प्रति एकड़ यूरिया खाद 75 दिन बाद डालें। हाईब्रिड कपास में बिजाई के समय 50 कि.ग्रा. यूरिया, 150 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट ड्रिल करें। इसके बाद 50 किलोग्राम यूरिया बिजाई के 45 दिन बाद व 50 किलोग्राम यूरिया बिजाई के 75 दिन बाद डालें।

बिजाई के तुरन्त बाद स्टॉम्प 30 (पैण्डीमिथालीन) का प्रयोग 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250-300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, सांवक आदि किस्म के खरपतवारों पर अच्छा नियन्त्रण हो जाता है। स्टॉम्प का छिड़काव करते समय खेत में अच्छी नमी का होना ज़रूरी है।

बीमारियां प्राय: उन खेतों में अधिक हानि पहुंचाती हैं जिनमें उपचारित बीज न बोया गया हो। भूमि एवं बीजजनित बीमारियों से बचाव के लिए बोने से पहले बीज का उपचार कर लें। उपचार के लिए 10 लीटर पानी में 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन घोल लें। इस घोल में 5-6 किलोग्राम रोएं वाले बीज को 6-8 घंटे तथा 6-8 किलोग्राम बगैर रोएंदार बीज को केवल 2 घंटे तक भिगोकर उपचारित करें। जिन खेतों में जड़ गलन का विशेष प्रकोप देखा गया है ऊपर वाले उपचार के साथ 2 ग्राम बाविस्टिन प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बोने से पहले बीज में लगाएं।

जहां दीमक की समस्या हो वहां पर 10 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई. सी. व 10 मि.ली. पानी को मिलाकर एक किलोग्राम बीज का इससे उपचार करके बिजाई करें।

बिना रोएं उतारे बीज को बोने के काम में लें तो बुवाई से पहले अल्युमिनियम फास्फाइड की एक 3 ग्राम की टिकिया से प्रति घनमीटर स्थान के हिसाब से 48-72 घंटे तक धूम्रित करें। उससे बीज में छुपी गुलाबी सूण्डियां मर जाएंगी। कपास की पिछली फसल के ठूंठों से होने वाले फुटाव को नष्ट करें ताकि उन पर मीलीबग व चित्तीदार सूण्डी न पनप सके ।

सूरजमुखी

सूरजमुखी की बिजाई के 3 से 6 सप्ताह बाद दो निराई-गोडाई करें एवं उगते बीज को पक्षियों से बचाएं। कटुआ सूण्डी रात में फसल को नुकसान करती है। इस कीट के नियंत्रण के लिए 10 कि.ग्रा. फेनवेलरेट 0.4 प्रतिशत धूड़ा प्रति एकड़ खेत में ठीक से मिलाएं या हल्की सिंचाई कर दें। इसके अलावा 80 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई. सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरीन 2.8 ई.सी. 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ भी छिड़क सकते हैं। बीजोपचार 3 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज की दर से अवश्य करें।

बैसाखी मूँग

जड़ गलन रोग से बचाव के लिए प्रति किलोग्राम बीज में 4 ग्राम थाइरम मिलाकर बोएं।

अरहर

अरहर की बिजाई मध्य-मार्च से मध्य जून तक करें, परंतु मानक व पारस को मध्य-जुलाई तक बोया जा सकता है। यद्यपि मध्य-अप्रैल की बिजाई से अधिक उपज मिलती है। अरहर की मुख्य उपयुक्त किस्में, यू पी ए एस 120 (मार्च से जुलाई के प्रथम सप्ताह), मानक व पारस (15 जून से 15 जुलाई) हैं। एक एकड़ के लिए 5 से 6 किलोग्राम बीज काफी होता है। बीजने से पहले अरहर के बीजों को अरहर के राईजोबियम के टीके से उपचारित करें। बिजाई पोरा विधि से दो खूडों का फासला 40 सैंटीमीटर रखकर करें। अरहर की पूरी पैदावार लेने के लिए 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 18 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ बिजाई के समय ही पोर दें।

ज्वार, बाजरा, लोबिया तथा संकर हाथी घास

चारे के लिए ज्वार की 20 मार्च से 10 अप्रैल तथा बाजरे व लोबिया की मार्च के अंत से अप्रैल के शुरू तक बिजाई समाप्त कर लें। ज्वार व बाजरा में 44 कि.ग्रा. यूरिया/एकड़ पोरें। ज्वार, बाजरा में 12 कि.ग्रा. फास्फोरस व 12 कि. ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। लोबिया में भी 100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 12 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें।

बरसीम व लूसर्न

बरसीम का शुद्ध बीज तैयार करने के लिए फसल से कासनी पौधों को निकाल देना चाहिए। दोनों फसलों में आवश्यकतानुसार पानी लगाएं तथा लूसर्न की कटाई करें।

दूसरी फसल कट जाने के बाद कभी-कभी बरसीम में टोका कीट का प्रकोप हो जाता है। चारे वाली फसल में 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

नोट : इस माह फसल बोने से पहले अपने खेतों की मिट्टी की जाँच अवश्य करवाएं। हरियाणा के हर ज़िले में एक-दो मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएं हैं। अच्छा हो यदि अपने ट्यूबवैल के पानी का भी परीक्षण करवा लें।

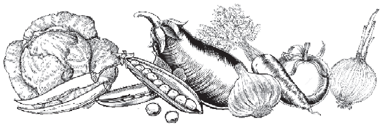

सब्जियों में

टमाटर

टमाटर की फसल की सिंचाई हर सप्ताह करें। खेत में पौध रोपने के बाद 35 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ आधी-आधी दो बार में दें (यदि न दी हो) प्रथम मात्रा रोपाई के लगभग तीन सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा फसल में फूल आने के समय। किसान खाद देते समय सिंचाई करना न भूलें। खरपतवार निकालते रहें। विषाणु रोग (पत्तों का चुरड़ा-मुरड़ा, पत्ती लपेट, धारियों वाला मोजेक) लगे पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि फल छेदक सूण्डी का आक्रमण हो तो 75 मि.ली. फैनवेलरेट 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। दवा प्रयोग से पहले ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें। इस माह फसल से फल मिलने शुरू हो जाएंगे। उन्हें तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेजें।

बैंगन

फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें। खरपतवार निकालें। खड़ी फसल में दो बार किसान खाद दें-प्रथम बार पौध रोपाई के लगभग 4 सप्ताह बाद, 80 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से (20 किलोग्राम नाइट्रोजन) तथा दूसरी बार पौधों में फूल आने के समय इतने ही उर्वरक और दें। नाइट्रोजन खाद देने के बाद सिंचाई करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें और नियमित रूप से छिड़काव करते रहें।

यदि बैंगन की फसल में रस चूसने वाले कीटों का आक्रमण हो तो 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। जैसे ही फल लगने शुरू हों तो फल छेदक कीटों का प्रकोप शुरू हो जाता है। इनके नियंत्रण के लिए 75 ग्राम स्पाइनोसेड (ट्रेसर) 45 एस.सी. या 80 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. या 70 मि.ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को अदल-बदल कर 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। दवा प्रयोग से पहले सब्जी बनाने वाले फलों को तोड़ लें तथा दवा प्रयोग के बाद फसल को 8-10 दिनों तक खाने के काम में न लें।

कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से पहले टहनियों के ग्रसित भाग व काने फलों को तोड़कर नष्ट कर दें।

मिर्च

फसल की सिंचाई करें और खरपतवारों को निकालते रहें। खड़ी फसल में तीन सप्ताह के बाद तथा दूसरी बार फूल आने के समय 12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से दें तथा सिंचाई करें। फूल आने के समय प्लानोफिक्स के घोल का (1 मिलीलीटर प्लानोफिक्स को 4½ लीटर पानी में मिलाएं) छिड़काव करें तथा इसे तीन सप्ताह बाद दोहराएं। ऐसा करने से फल कम गिरते हैं तथा उपज अच्छी होती है। चुरड़ा और सफेद मक्खी से बचाव के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। छिड़काव आवश्यकतानुसार 15-20 दिनों के अंतर पर करें। विषाणु रोग, जो सफेद मक्खी द्वारा फैलते हैं, का भी बचाव इस दवा के प्रयोग से हो जाता है। हरी तैयार मिर्चों को तोड़कर बाज़ार भेजें।

प्याज़ व लहसुन

फसल की सिंचाई करें तथा खुले कंदों पर मिट्टी चढ़ा दें। बीमारी व हानिकारक कीटों से रक्षा के लिए पहले बताई गई दवाओं का प्रयोग करें।

मूली

इस फसल में सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। गर्मी की मूली के लिए केवल पूसा चेतकी किस्म का ही प्रयोग करें। बाहर निकली हुई जड़ों पर मिट्टी चढ़ाएं। जड़ों को सख्त होने से पहले उखाड़ लें। मूली बिजाई के लगभग 40 दिनों के बाद उखाड़ने के योग्य हो जाती है। कीट-पतंगों से बचाव के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

भिण्डी

फलभेदक सूण्डी के नियंत्रण के लिए 75-80 मि.ली. स्पाईनोसैड 45 एस. सी. या 400 से 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

पालक

फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार किसान खाद का प्रयोग करें जिससे कि पत्तियों की बढ़वार हो सके। नई फसल की बिजाई भी इस माह की जा सकती है।

तरबूज व खरबूजा

फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित सिंचाई का प्रबंध करें। फसल में फूल आने के समय लगभग 6 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से दें तथा सिंचाई करें। लाल भूण्डी (लालड़ी) नामक कीट का प्रकोप होने पर 25 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। जड़ों में लट (ग्रब) लगी हों तो 1.6 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को बिजाई के एक माह बाद सिंचाई के साथ प्रति एकड़ लगाएं। चेपा, हरा तेला या माईट का प्रकोप होने पर 250 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार दोहराएं। फल मक्खी लगने पर 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. और 1.25 किलोग्राम गुड़ को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें तथा एक सप्ताह के अंतर पर आवश्यकतानुसार दोहराएं। प्रयोग से पहले ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें। पाऊडरी मिल्ड्यू नामक रोग लगने पर 800 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फैक्स) का घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। अधिक व भरपूर फसल प्राप्ति के लिए तरबूज में 25 पी.पी.एम. (आधा ग्राम जिबरैलिक एसिड) तथा खरबूजे में इथ्रेल 100 पी.पी.एम. (2 मि.ली. प्रति 20 लीटर पानी प्रति एकड़) का घोल बना कर दो व चार सच्ची पत्तियों पर छिड़काव करें। जिबरैलिक एसिड अल्कोहल में घुलनशील है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की फसलों की सिंचाई करें, खरपतवार निकालें तथा यूरिया (जैसा कि ऊपर तरबूज-खरबूजा में बताया गया है) दें। हानिकारक कीड़ों तथा बीमारियों से रक्षा के लिए ऊपर बताई गई दवाओं का प्रयोग करें। चप्पन कद्दू तथा टिण्डे की फसल के फलों को तोड़कर बाज़ार भेजें। अन्य सब्जियों में भी इस माह फल उतरने शुरू हो जाएंगे। उन्हें कच्ची ही तोड़कर बाज़ार भेजें।

अरबी

आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। बिजाई के लगभग एक माह बाद यूरिया खाद देकर सिंचाई करें।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की काट को खेत में अप्रैल से जुलाई तक लगाते हैं। खेत तैयार करें। पूसा लाल व पूसा सफेद किस्मों को प्रयोग में लें। एक एकड़ में बिजाई के लिए 24,000 से 28,000 बेलों की काटों की आवश्यकता पड़ेगी। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की सड़ी खाद, 16 किलोग्राम नाइट्रोजन, 225 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट (36 कि.ग्रा. फास्फोरस) तथा 55 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश (32 किलोग्राम पोटाश) प्रति एकड़ की दर से काटों को लगाने से पहले दें। खेत को क्यारियों में बांट लें तथा कतारों में 50-60 सैं.मी. की दूरी पर काटों को लगाएं। पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। काट लगाते समय ध्यान रखें कि ऊपर तथा नीचे की दोनों गांठें दबी हों।

अन्य सब्जियां

ग्वार तथा लोबिया की फसलों की सिंचाई करें व खरपतवार निकालते रहें। कीट पतंगों से बचाव के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. आदि दवाओं का प्रयोग करें। यह कीटनाशक 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

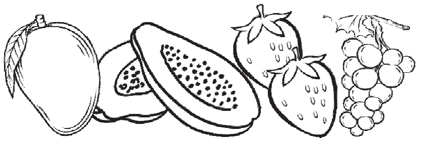

फलों में

इस महीने मौसम में काफी परिवर्तन होता है। तापक्रम बढ़ेगा और तेज़ हवाएं भी चलेंगी जोकि छोटे-2 बने हुए फलों को काफी नुकसान पहुंचा सकती हैं। फल उत्पादकों द्वारा समय पर सिंचाई करना, छोटे-छोटे फलों को गिरने से रोकना, छोटे पौधों के बीच में मूंग वगैरह की फसल लेना, घने लगे हुए फलों को छिद्दा करना, पौधों में बची आधी खाद की मात्रा डालना, छोटे पौधों को सहारा देना और फलों को ठीक ढंग से तोड़कर बाज़ार भेजना आदि बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

सात साल से अधिक आयु के पौधों में आधी बची हुई 750 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालें और हल्की गुड़ाई करके सिंचाई करें। 1.5 किलोग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 500 लीटर पानी में घोल कर छिड़कें। 15 दिन बाद 1.5 किलोग्राम बुझा हुआ चूना व 3 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट को 500 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें। संतरा व माल्टा में फल गिरने की समस्या को कम करने हेतु 6 ग्राम 2,4-डी, 12 ग्राम ओरियोफंजीन व 3 किलोग्राम जस्ता और 1.5 किलोग्राम चूना को 550 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर इस माह के आखिर में छिड़कें।

नींबू जाति के पौधों को नींबू का तेला (सिल्ला), सफेद मक्खी तथा सुरंगी कीड़े, पत्तों, टहनियों तथा फलों में से रस चूसकर तथा टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगें बनाकर भारी नुकसान करते हैं। इन कीड़ों के अधिक आक्रमण से पत्ते पीले पड़ जाते हैं। नींबू के तेला व सुरंगी कीट के नियंत्रण हेतु अप्रैल लगते ही 625 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें। यदि सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 500 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति एकड़ छिड़कें।

अंगूर

नए लगाए बाग में 25-30 ग्राम यूरिया प्रति बेल दूसरे सप्ताह डालें और सिंचाई करें। इसके अतिरिक्त मुख्य तने व पत्तियों के बीच से निकलने वाली टहनियों को तोड़ते रहें। बेलों के सीधा बढ़ने के लिए सीढ़ियों या बांस का सहारा दें।

पांच साल से ऊपर के फल दे रहे पौधों में 340 ग्राम यूरिया व 500 ग्राम पोटाशियम सल्फेट डालें और गुड़ाई करके सिंचाई करें। 15 अप्रैल के बाद सिंचाई हर सप्ताह करनी आवश्यक है। बीज रहित अंगूर की किस्मों से अधिक उपज लेने के लिए पूरी तरह फूल आ जाने की हालत में 20 पी. पी. एम. (20 कि.ग्रा./लीटर), जी. ए. व फल लगते समय 40 पी. पी. एम. (40 कि.ग्रा./लीटर) का छिड़काव करें।अंगूर की नई कोंपलों को, अंगूर के चुरड़ा, जो छोटे-छोटे पतले शरीर वाले भूरे रंग के कीड़े होते हैं, भारी क्षति पहुंचाते हैं। कीड़े

पत्तों की नसों के साथ-साथ चलते हैं व पत्तों की निचली सतह को कुरेद कर रस चूसते हैं। इससे पत्तियां पीली एवं तांबे जैसे रंग की हो जाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए 150 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. या 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ बेलों पर छिड़कें। कई बार बालों वाली सूण्डियां अंगूर की बेलों, पत्तों तथा फलों पर भी आक्रमण करती हैं जो पत्तों को भी खा जाती हैं, इनमें छेद कर देती हैं तथा फलों को भी खा जाती हैं। छोटी सूण्डियां को पत्तों सहित तोड़कर एकत्रित करके नष्ट कर दें। लाल धब्बे वाली बीमारी के नियंत्रण के लिए बाविस्टीन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

अमरूद

पौधों की सिंचाई 10-15 दिन के अंतराल पर करें। फल मक्खी के नियंत्रण के लिए एक एकड़ बाग में 7-8 फीरोमोन्ज़ ट्रैप लगाएं।

आड़ू व अलूचा

आड़ू (450 ग्राम) व अलूचा (180 ग्राम) में बची हुई यूरिया डालें। आड़ू व अलूचे के बागों की सिंचाई करें। इनमें अल (चेपा) बहुत हानि पहुंचाता है जिसके कारण पत्ते पीले होकर मुड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग के पेड़ों पर छिड़कें व आवश्यकता हो तो 15 दिन बाद यही छिड़काव फिर करें।

बेर

बेर के पौधों में सिंचाई बिल्कुल न करें क्योंकि पौधे इस समय सुप्तावस्था में आने लगते हैं। आखिरी सप्ताह में पौधों की काट-छांट करनी ज़रूरी है ताकि अगले वर्ष पैदावार अच्छी मिले।

आम

आम के फल गिरने की समस्या काफी रहती है। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत यूरिया व 0.5 प्रतिशत ज़िंक तथा 20 पी. पी. एम. 2, 4-डी (2 ग्राम 2, 4-डी 100 लीटर पानी में) का पौधों पर छिड़काव अवश्य करें।

यदि अब भी आम पर तेला आक्रमण कर रहा हो तो 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। इस छिड़काव में पत्तियों के काजली रोग का भी बचाव हो जाता है। 1½ से 2 किलोग्राम यूरिया का घोल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कने से काफी लाभ संभव है।

काला सिरा (ब्लैक टॉप) का नियंत्रण के लिए 6 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी में मिलाकर 2 छिड़काव फूल आने से पहले करें। तीसरा छिड़काव फल बनने के बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का करें।

लीची

फल लगने के बाद 875 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालकर गोड़ाई करके सिंचाई करें। फल फटने से रोकने के लिए पर्याप्त मात्रा में नमी बनाए रखें।

नोट : जैसे ही आषाढ़ी फसलों से खेत खाली होंगे, जिन किसान भाइयों ने नए बाग लगाने हों वे ज़मीन की तैयारी, निशानदेही आदि शुरू करें व मिट्टी की जांच करवाएं।

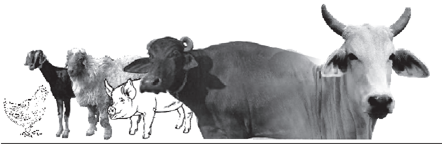

पशुओं में

- गेहूं-कटाई के दौरान व बाद में नई तूड़ी आने के बाद पशुओं में पेट बंधे की समस्या बहुत आम है, अतः कोशिश करें कि पशु-आहार में कभी-भी एकदम से बदलाव न करें और इस समय में पशुओं के हाज़मे को स्वस्थ रखने के लिए उचित प्रबंध रखें। पशुओं को सेंधा नमक, हरड़, हींग इत्यादि पशु-चिकित्सक की सलाहनुसार दे सकते हैं।
- सुनिश्चित करें कि सभी पशुओं को गलघोंटू व मुँहखुर के टीकाकरण हो गए हों, विशेषकर वयस्क व नए खरीदे पशुओं का ज़रूर ध्यान रखें।
- दिन में तापमान की बढ़ोत्तरी हो जाती है, अतः पशुओं को दोपहर में सीधे गर्म हवाओं से बचाएं।
- गर्मियों में पशुओं का दूध न घटे, इसलिए ध्यान रखें कि पशुओं के शरीर में पानी की कमी न हो पाए। अतः ऐसा प्रबंधन करें कि पशुओं को 24 घंटे ताज़ा/ठण्डा पीने योग्य पानी उपलब्ध रहे। यदि 24 घण्टे पानी उपलब्ध नहीं करवा सकते तो कम से कम 3-4 बार ठण्डा पीने योग्य पानी अवश्य उपलब्ध करवाएं और दिन में कम से कम 2-3 बार अवश्य नहलाएं व बीच-बीच में शरीर पर पानी भी डालें (विशेषकर भैंसों में)।
- नई तूड़ी को उपयुक्त मात्रा में यूरिया से उपचारित करके उसकी पौष्टिकता बढ़ाएं।
- हरे चारे में कमी के कारण पशुओं में खनिज तत्वों व लवणों की कमी हो सकती है, अतः हर पशु को खनिज मिश्रण ज़रूर दें।
- चारे के लिए बोई गई मक्का, बाजरा, ज्वार आदि की कटाई 45-50 दिन की अवस्था में करें।
- हर ब्यांत में पशुओं के दूध की एक बार ज़रूर नज़दीकी पशु-प्रयोगशाला में जांच करवाएं।
- ऐसे मौसम में कई बार पशु गर्मी के लक्षण दिन के बजाय रात को दिखाता है, अतः पशुपालक मादा पशुओं में गर्मी के लक्षण जैसे बार-बार रंभाना, बेचैन होना, बार-बार पेशाब करना इत्यादि का ध्यान रखें व गर्मी के लक्षण के 10-12 घण्टे बाद क्रत्रिम गर्भधारण करवाएं।

घर-आंगन में

पानी जीवन का आधार है अतः घरेलू स्तर पर पानी का शुद्धिकरण बहुत आवश्यक है। घरेलू स्तर पर पानी का शुद्धिकरण जनता वाटर फिल्टर के द्वारा किया जा सकता है जो कि एक बहुत ही सस्ती एवं स्थानीय तकनीक है।

अप्रैल के महीने में मौसम परिवर्तन के कारण शरीर के लिए पानी की ज़रूरतें भी बढ़ जाती हैं और थोड़ी देर के बाद ही कुछ ठण्डा पीने का मन करता है। इन दिनों बाज़ार में पेय पदार्थ बनाने वाले फलों एवं सब्जियों की बहुतायत होती है। अतः आप इनको घर पर बनाकर उपयोग में ला सकते हैं। उपर्युक्त जनता वाटर फिल्टर एवं पेय पदार्थ बनाने के लिए आप अपने ज़िले में कार्यरत कृषि विज्ञान केन्द्र में ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) से संपर्क स्थापित करें।

आलू की फसल को रोगों से कैसे बचाएं

✍ सरिता, राकेश कुमार[1] एवं सतीश कुमार मेहता
पादप रोग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आलू रबी फसल की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जो हर वर्ग द्वारा उपयोग में लाई जाती है। आलू पैदावार के हिसाब से तीसरे स्थान पर आता है, पहले पर चीन और दूसरे पर रूस आता है। जनसंख्या बढ़ने पर आलू की मांग भी बढ़ रही है। यह गेहूं धान तथा मक्का के बाद सबसे अधिक उगाई जाने वाली फसल है। आलू में विटामिन सी, बी कॉम्प्लेक्स तथा आयरन, कैल्शियम, मैंगनीज़ और फास्फोरस तत्त्व होते हैं। आलू की फसल में बुवाई से लेकर फसल उत्पादन, खुदाई तथा भंडारण तक समय-समय पर विभिन्न रोगों का प्रकोप होता है, परन्तु इनकी समय पर सही पहचान होना आवश्यक है ताकि इनका समय पर उपचार कर फसल को हानि से बचाया जा सके।

अगेती झुलसा (Early blight**) :** यह बीमारी आल्टरनेरिया सोलेनाई (*Alternaria solani*) नामक फफूंद से होती है। इस रोग का मुख्य स्रोत बीमारी वाला बीज ही होता है, पैदा होने के पश्चात तनों व पत्तों को रोग लग जाता है। यह बीमारी हल्की ज़मीन में नुकसान करती है। यह रोग फसल पर 3-4 सप्ताह बाद दिखाई देता है। पत्तों के ऊपर भूरे रंग के धब्बे पत्तों के सिरों या किनारों की तरफ अधिक होते हैं। इन धब्बों में बाद में कुछ केन्द्रीय चक्र गोलाकार नज़र आते हैं। पुराने धब्बे गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। इन धब्बों के बाहर का भाग पीले रंग का हो जाता है, जोकि आल्टरनेरिया एसिड के कारण होता है। ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं तथा पूरी पत्ती सूखी दिखाई देती है। अधिक प्रकोप से टहनियां तथा पूरा पौधा भी सूख जाता है। यह बीमारी 26-28° तापमान तथा 60-80 प्रतिशत नमी में फैलती है। इसको फैलने के लिए गर्म, नर्म मौसम तथा रुक-रुक कर बारिश की आवश्यकता होती है। यह बीमारी कटे पत्तों, टहनियों व ठीक तरह से खाद प्रबंधन न होने से आती है।

रोकथाम : खेत में अवशेषों को खत्म कर दें तथा स्वस्थ बीज का प्रयोग करें। रासायनिक खाद का संतुलित मात्रा में प्रयोग करें। बीज को गोदाम में से निकलते समय आलुओं के बीज की छंटाई करें। बीमारी वाले आलुओं को ढेरों में न छोड़ें, बल्कि गढ़ढे खोदकर ज़मीन में गहरा दबा दें। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर ब्लाईटॉक्स 50 या ज़िनेब (इजोफिल एम-45) में से किसी एक दवा की 600-800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। नई पैदावार को बचाने के लिए 15 दिन के अंतर पर छिडकाव दोहराएं। कुफरी गौरव व कुफरी पुखराज प्रतिरोधी किस्मों को लगायें।

पछेती झुलसा (Late blight**):** यह रोग फाइटोपथोरा इन्फेसटान्स (*Phytopathora infestans*) फफूंद के कारण होता है। इस रोग को पछेती अंगमारी, महामारी व झुलसा इत्यादि नामों से जाना जाता है। इस रोग के लक्षण पौधों के सभी भागों जैसे पत्तियों, तने व कदों पर दिखाई पड़ते हैं। शुरू में रोग का प्रकोप पत्तियों पर धब्बों के रूप में दिखाई देता है, जो बाद में गहरे भूरे तथा बैंगनी रंग में बदल जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ हल्के पीले रंग का घेरा बनता है। अधिक नमी व बादल छाए रहने पर धब्बे बड़े हो जाते हैं तथा पत्तियों की निचली सतह पर फफूंद की परत जम जाती है।

पत्तों पर काले धब्बे बन जाते हैं जो कुछ दिनों बाद बड़े होकर सारी पत्ती पर फैलने लग जाते हैं। पत्तों से बदबू आने लगती है तथा आलू के कंद भी प्रभावित होते हैं। फसल तैयार होने से पहले मर जाती है। सुबह के समय सफेद पत्तों के नीचे फफूंद को धब्बों के किनारे पर देखा जा सकता है। यह फफूंद कई जीवन चक्र पूरे कर लेती है इसलिए 1-2 सप्ताह में फसल नष्ट हो जाती है। बारिश के बाद बीजाणु ज़मीन पर गिर जाते हैं जोकि कंदों पर धंसे हुए धब्बे की तरह बन जाते हैं। फफूंद के लिए 12-24° तापमान व 90 प्रतिशत से अधिक नमी की आवश्यकता होती है।

रोकथाम : खेत में चारों ओर खरपतवार नष्ट करते रहना चाहिए। हमेशा रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें। मिट्टी चढाते समय ऊँची मेंढ़ें बनायें। जिस दिन बादल दिखाई दें उस दिन सिंचाई न करें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर फफूंदनाशक दवा मैन्कोज़ैब (इंडोफिल एम 45) 600-800 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से 200 लीटर पानी में मिलाकर 4-5 छिड़काव 15 दिन के अंतर पर करें। जब मौसम ठण्डा तथा आर्द्र हो तो ये छिड़काव 7 दिनों के बाद भी किया जा सकता है।

काला कोढ़ (Black scurf**):** यह बीमारी राइजोक्टोनिया सोलेनी (*Rhizoctonia solani*) नामक फफूंद से होती है। इस रोग में आलू पर काली पपड़ी सी बन जाती है जोकि आलू को अन्दर से कुछ नहीं करती। पपड़ी में इस रोग के फफूंद (स्कलैरोशिया) पाये जाते हैं। इस तरीके से आलू बीजने से रोगी आलू पैदा होते हैं। तने पर कोढ़ में पौधे का ऊपरी भाग भूरा हो जाता है और धंसे हुए, गोल व भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप की अवस्था में पौधे मर जाते हैं। तने पर प्रकोप की समस्या भारत में कम आती है। इस बीमारी से पैदावार में कमी आती है तथा इसकी गुणवत्ता कम हो जाती है।

रोकथाम : बीज के लिए अच्छे स्वस्थ आलू चुनें। भंडारण के समय यह ध्यान रखें कि संरक्षण किये हुए आलुओं में स्कलैरोशिया दिखाई न दें। आलू के कंदों का 0.25% एमिसान के घोल में 15 -20 मिनट तक डुबोकर उपचार करें। एक क्विंटल कंदों को डुबोने के लिए 100 लीटर घोल पर्याप्त है। इस घोल को 10-12 बार प्रयोग किया जा सकता है।

चारकोल गलन (Charcoal rot**):** यह बीमारी मैक्रोफोमिना फेजोलिना (*Macrophomina phaseolina*) नामक फफूंद से होती है। आलू के कंदों की आँखों के चारों ओर काले धब्बे बन जाते हैं जो कंद को काला बना देते हैं। भंडारण में रखे आलुओं में भी यह रोग हो सकता है। यदि आलू ज़मीन में ही रहने दिए जायें और बाद में मौसम आने पर इन्हें खोदा जाये तो ज़मीन में यह रोग फैल जाता है। आलू के कंद चारकोल जैसे काले पिण्ड के रूप में बदल जाते हैं। इस तरह के कंद कभी बीज में प्रयोग न करें।

रोकथामः केवल अगेती किस्म लगाएं। अधिक गर्मी पड़ने से पहले ही आलू खोद लें (मध्य मार्च)। बड़े आकार के आलू का संरक्षण न करें। अगर खुदाई में देरी हो तो मिट्टी को सिंचाई द्वारा ठण्डा रखने से आलू ठीक रहते हैं। आलू के बीज का 0.25% एमिसान के द्वारा उपचार करें।

काला सड़न (Black rot**):** यह बीमारी इरविनिया कैरेटोवोरा (Erwinia

[1]सब्जी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

carotovora) के द्वारा होती है। इस बीमारी से ग्रसित पौधों का रंग फीका हरा या पीला पड़ने लगता है। पौधा मुरझाकर मर जाता है तथा बीमारी वाले आलू भंडारण में सड़ने लग जाते हैं।

रोकथाम : रोगरहित प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। जिन पौधों पर बीमारी दिखाई दे उन्हें निकालकर नष्ट कर दें। खेत में बार-बार न घुसें।

सामान्य स्कैब (General scab**):** यह बीमारी स्ट्रैप्टोमाईसिस स्कैब (Streptomyces scab) द्वारा होती है। इस रोग में कंदों पर कड़े गोल कार्क जैसे स्थान दिखाई देते हैं जो कभी-कभी हल्के या गहरे भूरे रंग के होते हैं। रोगग्रस्त बीज का कंद रोग को फैलाने का काम करते हैं।

रोकथाम : स्कैब रहित स्वस्थ बीज प्रयोग करें। शीत भंडारण से पहले 30 मिनट तक बोरिक एसिड के 3% घोल वाला उपचार कोढ़ व स्कैब के लिए प्रभावशाली है। अगर यह उपचार न किया हो तो 0.25% एमिसान से 15-30 मिनट तक कंदों का उपचार करें। बिजाई से पहले हरी खाद देने से रोग नियन्त्रण में सहायता मिलती है।

पोटैटो वायरस एक्स व एस या मोजैक (Potato virus X and S or mosaic**) :** यह एक वायरस जनित रोग है जोकि पोटैटो वायरस एक्स (Potato virus) से होता है। यह रोग शुरुआत में बीमारी वाले कन्दों के प्रयोग से होता है तथा बाद में एफिड द्वारा फैलता है। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ कुछ मुड़े हुए या उन पर हल्के हरे चकत्ते व चितकबरापन (Mottling) दिखाई देते हैं। इन चकत्तों से आलू की बिक्री प्रभावित होती है जिसका सीधा असर किसान की आय पर होता है। अधिक प्रकोप से पौधे सिकुड़ जाते हैं जो बौनापन (Dwarfing) लक्षण प्रदर्शित करती है। इस रोग के प्रभाव से कन्दों पर ऊतकक्षय (Necrosis) भी हो सकता है।

रोकथाम : रोग निरोधी प्रजाति को बोने में प्राथमिकता देनी चाहिए। जिन पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ें उन्हें कन्द सहित उखाड़ कर नष्ट कर दें। बीमारी वाले आलुओं को ढेरों में न छोड़ें बल्कि ज़मीन में गहरा दबा दें। खेत में बार-बार न घुसें।

पोटैटो वायरस वाई या वेन बैन्डिंग मोजैक (Potato virus Y or vein Banding mosaic**) :** यह एक वायरस जनित रोग है जोकि पोटैटो वायरस वाई (Potato virus Y) से होता है। इस रोग में पत्तों की नाड़ें मुड़ जाती हैं व पत्तों पर पीले या हरे-पीले निशान (चकत्ते) पड़ जाते हैं। इसके लक्षणों में पत्तों के थोड़े चित्तीदार होने से लेकर उनके गलने और पौधे का नाश तक शामिल है। कंदों की संख्या घट जाती है और ये छोटे रह जाते हैं।

रोकथाम : रोग रहित प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। खेत में रोग का प्रकोप जिस पौधे में हो उस पौधे को उखाड़कर खेत से दूर मिट्टी में दबा दें। फसल परिवर्तन विधि को अपनाना चाहिए। चेपे की संख्या कम करने के लिए 300 मि. लीटर रोगोर के हिसाब से 10-15 दिनों के अंतर पर 3-4 छिड़काव करें।

पोटैटो अपिकल लीफ कर्ल वायरस (PALCVD**) :** यह एक वायरस जनित रोग है आलू का अपिकल लीफकर्ल वायरस रोग (PALCVD) के पहले लक्षण नसों को साफ करने के रूप में दिखाई देते हैं और पत्तियां मुड़ी हुई दिखाइ देती हैं। संक्रमित पत्तियों में मरोड़ और सिकुड़न के लक्षण दिखाई

(शेष पृष्ठ 20 पर)

हरियाणा में जापानी पोदीना की खेती

राजेश कुमार आर्य, पवन कुमार एवं झाबरमल सुतलिया
औषधीय, सगंध एवं क्षमतावान फसल संभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में मेंथा/पोदीने की विभिन्न प्रजातियों की खेती की जाती है। जिनमें जापानी पोदीना (*मेन्था आरवेन्सिस*), अमेरिकन पोदीना (*मेन्था पिपरिटा*), घरेलू पोदीना (*मेन्था स्पाइकाटा*) तथा बरमोनोट पोदीना (*मेन्था सिट्रेटा*) आदि प्रमुख हैं। मेंथा के तेल की अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में मांग को देखते हुए निर्यात की संभावनाएं काफी अधिक हैं। इसके अतिरिक्त हरियाणा के हिसार ज़िले में मेंथा के तेल से मेन्थोल बनाने का कारखाना स्थापित किया जा रहा है। इसलिए किसान यहां भी मेंथा का तेल बेच सकते हैं। मेंथा का तेल इसकी पतियों से आसवन विधि द्वारा निकाला जाता है।

मुख्यत: जापानी पोदीना व्यापारिक स्तर पर लगाया जाता है। क्योंकि इसके तेल की मांग अधिक है तथा उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। इसके तेल का मुख्य घटक मेन्थोल तथा मेन्थोन है। जापानी पोदीने की खेती भारत में सबसे पहले जम्मू में की गई। बाद में इसकी खेती उत्तर प्रदेश में तराई क्षेत्र में व्यापारिक रूप में की जाने लगी। वर्तमान में इसकी खेती पंजाब, हरियाणा, बिहार तथा मध्य प्रदेश में भी की जाती है। विश्व में मेंथा उत्पादन में भारत प्रथम स्थान पर है। चीन भारत का मुख्य प्रतिद्वंद्वी है। वर्तमान में कोविड-19 के चलते भारत अपना मेंथा उत्पादन बढ़ाकर विश्व बाज़ार में अपना आधिपत्य स्थापित कर सकता है।

उपयोग : जापानी पोदीने की खेती मुख्य रूप से इसके सगंध तेल से मैन्थोल प्राप्त करने के लिए की जाती है। जिसका उपयोग स्वादगंध उद्योग व विभिन्न प्रकार की औषधियों के निर्माण में किया जाता है।

भूमि एवं जलवायु : इसकी खेती के लिए समतल, अच्छी जल निकासी वाली, बलुई-दोमट से दोमट मिट्टी, जिसका पी.एच. मान 6.0 से 8.5 हो, उत्तम पाई गई है। इसकी खेती के लिए 15-250 सी तापमान उपयुक्त रहता है तथा औसतन वर्षा 200-250 सैं.मी. आवश्यक है। वर्षा की कमी को नहर या टयूबवैल के बढ़िया पानी द्वारा सिंचाई देकर पूरा किया जा सकता है।

उन्नत किस्में : सिमैप, लखनऊ द्वारा जापानी पोदीने की अनेक किस्में विकसित की गई हैं जिनमें, शिवालिक, गोमती, हिमालय, एम.ए.एस.-1, हाईब्रिड-77, कोशी, सक्षम, संभव आदि हैं।

खेत की तैयारी एवं खाद : मिट्टी पलट हल से 2-3 बार अच्छी तरह से जुताई करें, खेत में घास-फूस, दूब-मेथा आदि बिल्कुल निकाल दें तथा सुहागा लगा कर खेत को ढेले रहित भूरभूरा बना लें।अच्छी पैदावार लेने के लिए 10-15 टन गोबर की अच्छी गली-सड़ी खाद प्रति एकड़ खेत तैयार करते समय डालें। गोबर की खाद को खेत तैयार करते समय ही ज़मीन में अच्छी तरह से मिला दें।

रोपाई का समय एवं विधि : पोदीने/मेंथा के पौधों में बीज बहुत ही कम बनता है तथा उसमें अंकुरण क्षमता भी कम होती है। अत: इसकी खेती भूमिगत सकर द्वारा ही की जाती है। इसकी रोपाई का उचित समय मध्य जनवरी से मध्य फरवरी माना गया है। इसकी रोपाई के लिए कल्टीवेटर की

सहायता से 45 सैं.मी. के अन्तराल से खुड निकाल लें और 8-10 सैं.मी. लम्बे ताज़ा स्वस्थ टुकड़ों को 8-10 जड़ों के टुकड़े प्रति मीटर के हिसाब से 4-5 सैं.मी. गहरे मिट्टी में खुरपे की सहायता से दबा दें तथा हल्की सिंचाई करें ताकि जड़ें सूखने न पाएं और फुटाव शीघ्र हो जाए। एक एकड़ की रोपाई के लिए 150-200 किलोग्राम जड़ के टुकड़े (सकर) की आवश्यकता होती है। जड़ गलन रोग से बचाव के लिए सकर (टुकड़ों) को 1 ग्राम बाविस्टिन प्रति लीटर पानी के घोल में 5-10 मिनट डुबोकर रोपाई से पहले निकालें। एक एकड़ के लिए 40 लीटर का घोल पर्याप्त रहता है।

सिंचाई : अधिक पैदावार लेने के लिए मार्च में 10-15 दिन के अंतर से अप्रैल-मई-जून में 6-8 दिन के अन्तर पर तथा सर्दियों में 20-25 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करें। बरसात के मौसम में वर्षा हो जाने पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु यदि अधिक वर्षा हो जाए तो पानी निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

निराई-गुडाई : पहली व दूसरी निराई-गुडाई रोपाई के लगभग 3-4 सप्ताह के अन्तर पर करें। इसके बाद में फसल को खरपतवार रहित रखें।

कटाई : पौधे के खूब फैलाव, पत्तियों में अच्छी हरियाली व गुच्छों में फूल आने का समय ही कटाई के लिए अच्छा है। पौधे की कटाई 6-8 सैं.मी. ऊँचाई से क्रमश: रोपाई के 100-120 दिन (मई-जून) तथा 180-190 दिन (अगस्त-सितम्बर) बाद करें। मौसम, खाद-पानी की समुचित व्यवस्था व फसल प्रबंध को ध्यान में रखते हुए कटाइयों की संख्या तीन भी की जा सकती है। तीसरी कटाई दूसरी कटाई के 65-70 दिन बाद करें परन्तु हर हालत में नवम्बर तक कर लें।

तेल निकालना : कटी हुई फसल को 2-4 घंटे घूप में रखें। रातभर खेत में खुला रखा जा सकता है। परन्तु ढेर बनाकर बिल्कुल भी न रखें। आसवन विधि से भाप द्वारा इसका तेल निकालें। ध्यान रहे, तेल निकालने का समुचित प्रबंध कटाई से पहले अवश्य हो जाना चाहिए।

पैदावार: औसतन एक एकड़ से 80-100 क्विंटल पैदावार होती है जिसमें 50-60 किलोग्राम तेल निकलता है। उचित देखरेख में 100-125 क्विंटल फसल उत्पादन तथा 70-80 किलोग्राम तेल प्रति एकड़ प्राप्त हो सकता है। ●

(पृष्ठ 19 का शेष)

देते हैं। युवा संक्रमित पत्तियों में पत्ती लामिना युवा पौधों में नोटचिंग और इन्डेन्शन पत्तों पर देखी जाती हैं। संक्रमित पत्तियों में नसों का मोटा होना और पत्ती के ऊपर की ओर झुकाव दिखाई देता है। इसके बाद, लीफ मार्जिन में कमी आती है और लीफमार्जिन लहरदार हो जाता है। संक्रमित पत्ते आकार में छोटे और विकृत हो जाते हैं। संक्रमित पौधे छोटे इंटर्नोड्स के साथ बौने रह जाते हैं। इस बीमारी के कारण पैदावार में कमी आ जाती है। कंदों की संख्या घट जाती है और ये छोटे रह जाते हैं।

रोकथाम : रोगरहित प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें। खेत में रोग का प्रकोप जिस पौधे में हो उस पौधे को उखाड़कर खेत से दूर मिट्टी में दबा दें। फसल परिवर्तन विधि को अपनाना चाहिए। कीड़ों की संख्या कम करने के लिए इन्सेक्टिसिडेस का छिड़काव 10-15 दिनों के अंतर पर 3-4 बार करें। ●

मशरूम के मुख्य कीट : लक्षण व प्रबन्धन

✍ **रूबी गर्ग, सुनीता यादव एवं रति मुक्तेशवर**[1]
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत देश की बढ़ती हुई आबादी के लिए प्रोटीन की कमी को पूरा करने के लिए मशरूम एक बेहतरीन विकल्प है। यहां तीन तरह के मशरूम का मुख्यत: उत्पादन होता है जिसमें सबसे पहले सितम्बर महीने से 15 नवंबर तक ढिंगरी मशरूम का उत्पादन कर सकते हैं। इसके बाद बटन मशरूम का उत्पादन होता है, यह फरवरी-मार्च तक चलती है। इसके बाद मिल्की मशरूम का उत्पादन करते हैं जो जून-जुलाई तक चलता है। मशरूम कई तरह से लाभकारी है :

1. मशरूम से प्राप्त प्रोटीन की पाचन शक्ति 60-70 प्रतिशत तक होती है, जो पौधों से प्राप्त प्रोटीन से कहीं अधिक होती है।
2. मशरूम पराली प्रबन्धन में भी बहुत अधिक लाभदायक है क्योंकि इसको उगाने के लिए कम्पोस्ट खाद, पराली के उपयोग से ही बनता है।

यदि हम कीटों की बात करें सियारिड मक्खी, फोरीड मक्खी, सेसिड मक्खी, स्प्रिंग टेल्स एवं माईट इत्यादि मशरूम को हानि पंहुचाते हैं।

सियारिड मक्खी : यह मशरूम के लिए सबसे अधिक क्षतिकारक मक्खी है। यह दिखने में मच्छर जैसी लगती है। इसके लार्वा मशरूम की कलियों और बटनों दोनों को क्षतिग्रस्त करते हैं जिसके कारण मशरूम भूरे रंग की हो जाती है और वह चमड़े की तरह महसूस होती है। लार्वा डंडे के अंदर रहते हैं।

मशरूम कम्पोस्ट के अत्यधिक गरम होने के बाद ठंडा किया जाता है तब वयस्क मक्खी कम्पोस्ट की गंध से आतंकित होकर अपने अंडे कम्पोस्ट में देती है। एक मक्खी औसतन 150 से 170 अंडे देती है। 3-4 दिन में अंडों से लार्वा से निकल आते हैं। लार्वा निकलने के बाद कवक जाल को नष्ट कर देते हैं। उत्पादन कक्ष के तापमान के अनुसार 2-3 सप्ताह में मक्खियों की नई पीढ़ी तैयार हो जाती है।

फोरिड मक्खी : मक्खी का रंग भूरा काला होता है और लार्वा का रंग सफेद होता है और ये पैर रहित होते हैं। ये मक्खियां तेज़ गति से इधर-उधर उड़ती हैं। वयस्क मादा बढ़ती हुई मशरूम के केसिंग की सतह पर अंडे देती है। लार्वा का सिर नुकीला होता है। लार्वा मशरूम के डंडों में सुरंग बनाता है और अंदर से खाता है। मादा लगभग 50 अंडे देती है। वयस्क मादा कम्पोस्ट में उगती हुई मशरूम की तरफ बढ़ती है। कीट का जीवन चक्र तापमान और वातावरण पर निर्भर करता है।

सेसिड मक्खी : यह मक्खियां अति सूक्ष्म होती हैं। लार्वा पद रहित एवं सफेद या पीले रंग के होते हैं। सेसिड की प्रजनन क्षमता बहुत तीव्र होती है जिसके फलस्वरूप यह उत्पादन को भारी हानि पहुंचाते हैं। मशरूम में लार्वा की उपस्थिति और बाद मे जीवाणु संक्रमण के कारण मशरूम भूरे एवं भद्दे हो जाते हैं। (शेष पृष्ठ 27 पर)

[1]विस्तार शिक्षा विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

आम के रोग व नियन्त्रण

✍ **राजेन्द्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण**
पादप रोग विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आम फलों का राजा है। आम के पेड़ों पर कई बीमारियाँ लगती हैं। जिन की समय पर रोकथाम न की जाये तो फलों को नुकसान हो सकता है। आम की प्रमुख बीमारियां और उनकी रोकथाम के उपाय नीचे दे रहे हैं :

1. विकृति रोग या गुच्छा-मुच्छा (मालफोरमेशन) : यह रोग अत्यधिक व्यापक व घातक हैं। इस रोग का प्रकोप पौधों की किस्म, आयु, मौसम एवं स्थान के अनुसार अलग-अलग देखने में आता है। इसके दो प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

पहले प्रकार में अधिकतर बड़े पेड़ों पर बौर आते समय फूलों के स्थान पर फूलों का गुच्छा सा बनता है। इन गुच्छों में छोटी-2 पतियाँ भी दिखाई देती हैं। ऐसे रोगी फूल स्वस्थ फूलों से पहले आते हैं और इन गुच्छों में मादा फूलों की अपेक्षा नर फूलों की संख्या अधिक होती है। ऐसे गुच्छों पर फल नहीं लगते हैं और अगर लग भी जाएं तो छोटी अवस्था में गिर जाते हैं।

दूसरे प्रकार में छोटे पेड़ों की पहली व दूसरी शाखाओं के सिरों के निकट नई पतियों की वृद्धि होती है और छोटी-2 पत्तियों का एक गुच्छा सा बन जाता है। जो झाड़ु के रूप में दिखाई देता है। रोगग्रस्त पौधों की वृद्धि रुक जाती है। कभी-कभी बहुत छोटी अवस्था में पौधे मर भी जाते हैं।

कारण : यह बीमारी फ्यूजेरियम मोनीलीफर्मि फफूंद द्वारा पुष्पवृन्तों पर आक्रमण के फलस्वरूप होता है। पौधों में हार्मोन्स का असन्तुलन होने से इस रोग की उत्पति हैं। बौर आते समय तापमान कैल्शियम-नाइट्रोजन का अनुपात, विषाणु पूरा वर्ष अधिक सिंचाई एवं भूमि में विभिन्न तत्वों की कमी होना आदि कारक इस रोग में महत्व भी रखते हैं।

नियन्त्रण : रोग नियन्त्रण के लिए अगस्त, सितम्बर में सभी बेढंगे फूलों या रोग ग्रस्त गुच्छों (कोंपलों) को लगभग 6 से 12 इंच टहनी के पीछे से कैंची से काट दें।

फंफूदी व कीड़ों से बचाव के लिए अगस्त सितम्बर तथा दिसम्बर-जनवरी में कैप्टान 0.1 प्रतिशत (100 ग्राम दवा 100 लीटर पानी) व मैलाथियान 0.1 प्रतिशत के मिश्रण टॉनिक मिलाकर छिड़काव करें।पुष्प गुच्छे बनने की अवस्था में बाविस्टिन नामक दवा का 0.2 प्रतिशत (200 ग्राम दवा 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। एक सप्ताह के अन्तराल पर इसके तीन छिड़काव करें। पेड़ों को फरवरी के मध्य में प्रारम्भिक फूलों से रहित करने से भी रोग का नियन्त्रण किया जा सकता है।

सितम्बर के अन्त में या अक्तूबर के प्रारम्भ में 300 पी.पी.एम. नैप्थलीन एसिटिक एसिड (30 ग्राम एन.ए.ए. 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

2. टहनीमार रोग (एन्थ्रेक्नोज़) : यह रोग पत्तियों, टहनियों, फूलों तथा फलों को प्रभावित करता है। पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। जो बाद में आपस में मिलकर पत्तों के अधिकतर भाग पर फैल जाते हैं। धब्बे के स्थान पर पत्ती सूख जाती है और प्राय: फट जाती है। टहनियों पर रोग ऊपरी भाग से शुरू होता है। जहाँ हल्के भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। ऐसी टहनियों की पतियाँ सूखकर झड़ने लगती हैं और अन्त में टहनी भी सूख जाती है। यदि बौर आने के समय मौसम नम हो जाए तो यह रोग फूलों को भी नष्ट कर देता है। बौर पर बहुत छोटे काले धब्बे पड़ जाते हैं और फूल सूखकर गिर जाते हैं। फलों पर इस रोग का आक्रमण पकने से पहले ही हो जाता है परन्तु लक्षण पकने पर ही धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। धब्बों के बीच का भाग थोड़ा-सा धंस जाता है।

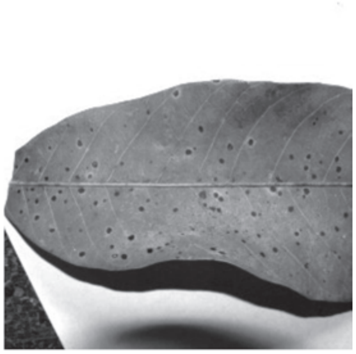

यह फफूंद रोग ग्रस्त पत्तियों व टहनियों पर जीवित रहकर अनुकूल वातावरण में पुन: संवमित करता है। पानी की बौछार तथा कीड़ों आदि से इसका फैलाव होता है।

बचाव : रोगग्रस्त टहनियों को काट दें। कटे स्थान पर बोर्डोपेस्ट लगा दें और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (ब्लाइटॉक्स) 0.3 प्रतिशत घोल का जनवरी, फरवरी, अप्रैल व सितम्बर में छिड़काव करें।

3. सफेद चूर्णी रोग : फूलों पर सफेद चूर्ण के रूप में लक्षण दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त फूल गिर जाते हैं फूल लगने के समय रातों का ठंडा तथा बारिश आदि का हो जाना रोग के फैलाव एवं उत्पत्ति में सहायक होता है। जिससे फलों की संख्या में कमी आ जाती है यह फफूंद आम के पेड़ पर जीवित रहता है और इसका फैलाव हवा द्वारा होता है।

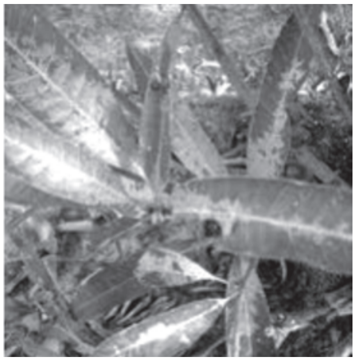

नियन्त्रण : यह रोग भट्टों की ज़हरीली गैस निकट के बागों में विशेषकर दिखाई देता है। इस रोग के प्रकोप से आम के फल नीचे से काले जले हुए हो जाते हैं और बाद में सड़ जाते हैं। कई बार फल सिरे से बेढंगे से लम्बे, पहले से पक जाते हैं और एक सिरा काला हो जाता है, जो आधे फल तक चला जाता है।

बोरेक्स 0.6 प्रतिशत (6 ग्राम एक लीटर पानी) के 2 छिड़काव फूल आने से पहले फरवरी से अप्रैल में करें। तीसरा छिड़काव फल बनने के बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का करें। जुलाई से सितम्बर माह में सभी बेढंगे फूलों के गुच्छे काट डालें। पौधों को अच्छी तरह खाद दें। ●

फव्वारा सिंचाई तकनीक : कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगिता

✍ **नरेंद्र कुमार, संजय कुमार एवं आशीष कम्बोज**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फव्वारा द्वारा सिंचाई एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा पानी का हवा में छिड़काव किया जाता है और यह पानी भूमि की सतह पर कृत्रिम वर्षा के रूप में गिरता है। पानी का छिड़काव दबाव द्वारा छोटी नोज़ल या ओरीफिस में प्राप्त किया जाता है। पानी का दबाव पम्प द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। कृत्रिम वर्षा चूंकि धीमे-धीमे की जाती है, इसलिए न तो कहीं पर पानी का जमाव होता है और न ही मिट्टी दबती है। इससे ज़मीन और हवा का सबसे सही अनुपात बना रहता है और बीजों में अंकुर भी जल्दी फूटते हैं।

यह एक बहुत ही प्रचलित विधि है जिसके द्वारा पानी की लगभग 30-50 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। देश में लगभग सात लाख हैक्टेयर भूमि में इसका प्रयोग हो रहा है। यह विधि बलुई मिट्टी, ऊंची-नीची ज़मीन तथा जहां पर पानी कम उपलब्ध है वहां पर प्रयोग की जाती है। इस विधि के द्वारा गेहूँ, कपास, मूंगफली, तम्बाकू तथा अन्य फसलों में सिंचाई की जा सकती है। इस विधि के द्वारा सिंचाई करने पर पौधों की देखरेख पर खर्च कम लगता है तथा रोग भी कम लगते हैं।

फव्वारा और सतही सिंचाई पद्धतियों की तुलना

- सतही सिंचाई की अपेक्षा छिड़काव सिंचाई द्वारा जल प्रबन्धन आसान होता है।
- छिड़काव सिंचाई पद्धति में फसल उत्पादन के लिए लगभग 10 प्रतिशत अधिक क्षेत्रफल उपलब्ध होता है क्योंकि इसमें नालियां बनाने की आवश्यकता नहीं होती।
- छिड़काव सिंचाई विधि में पानी का लगभग 80 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है, जबकि पारम्परिक विधि में सिर्फ 30 प्रतिशत पानी का ही उपयोग होता है।

इस विधि में पम्प यूनिट, रेणु छत्रक, दाबमापी, मुख्य लाइन, उप-मुख्य लाइन, दाव नियंत्रक पेच, राइजर लाइन, फव्वारा शीर्ष तथा अन्तिम पेच प्रयोग किए जाते हैं। जहां पर सिंचाई के लिए खारा जल ही उपलब्ध हो, वहां पर इस प्रणाली द्वारा अधिक पैदावार ली जा सकती है।

फव्वारा सिंचाई के फायदे

- सिंचाई के परम्परागत तरीकों के मुकाबले इस विधि से सिंचाई करने पर मात्र 50-70 प्रतिशत पानी की आवश्यकता होती है।
- ज़मीन को समतल करने की आवश्यकता नहीं होती। ऊंचे-नीचे और मुश्किल माने जाने वाले भू-भागों में भी खेती की जा सकती है।
- बजाय इस बात के इंतज़ार में बैठे रहने के कि स्वाभाविक वर्षा या फिर सतही सिंचाई के बाद ज़मीन ठीक से नम हो तो जुताई की जाए, फव्वारा पद्धति से उचित समय पर जुताई और पौध रोपाई का काम किया जा सकता है।
- पाले और अत्यधिक गर्मी से फसल की गुणवत्ता कम हो जाती है। इस सिंचाई से फसल को बचाया जा सकता है।
- पौधों की रक्षा पर होने वाला खर्च कम हो जाता है क्योंकि कीड़े-मकोड़े और बीमारियां जैसी समस्याएं कम पैदा होती हैं। छिड़काव की पद्धति के जरिए कीटनाशकों अथवा पौधों को पौष्टिकता देने वाली दवाएं बेहतर ढंग से छिड़की जा सकती हैं।
- फव्वारा के जरिए की जाने वाली सिंचाई का लाभ लगभग हर किस्म की फसल को पहुँचाया जा सकता है।
- नालियों या बांध बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती जिससे खेती के लिए ज़्यादा ज़मीन उपलब्ध हो जाती है।
- इस विधि के द्वारा घुलनशील खाद भी लगाई जा सकती है, जिससे खाद की बचत होती है।

फव्वारा सिंचाई की सीमाएं

- अधिक हवा होने पर पानी का वितरण समान नहीं रह पाता है।
- पके हुए फलों को फुहारे से बचाना चहिए।
- पद्धति के सही उपयोग के लिए लगातार जलापूर्ति की आवश्यकता होती है।
- पानी साफ हो, उसमें रेत, कूड़ा-करकट न हो और पानी खारा नहीं होना चाहिए।
- इस पद्धति को चलाने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
- चिकनी मिट्टी और गर्म हवा वाले क्षेत्रों में इस पद्धति के द्वारा सिंचाई नहीं की जा सकती।

उपयुक्तता

यह विधि सभी प्रकार की फसलों की सिंचाई के लिए उपयुक्त है। कपास, मूंगफली तम्बाकू, कॉफी, चाय, इलायची, गेहूँ व चना आदि फसलों के लिए यह विधि अधिक लाभदायक है। यह विधि बलुई मिट्टी, उथली मिट्टी ऊंची-नीची ज़मीन, मिट्टी के कटाव की समस्या वाली ज़मीन तथा जहां पानी की उपलब्धता कम हो, वहां अधिक उपयोगी है।

छिड़काव सिंचाई पद्धति की अभिकल्पना एवं रूपरेखा के लिए सामान्य नियम :

- पानी का स्रोत सिंचित क्षेत्रफल के मध्य में स्थित होना चाहिए जिससे कि कम से कम पानी खर्च हो।
- ढलाऊ भूमि पर मुख्य नाली ढलान की दिशा में स्थित होनी चाहिए।
- पद्धति की अभिकल्पना और रूप रेखा इस प्रकार होनी चाहिए जिससे कि दूसरे कृषि कार्यों में बाधा न पड़े।
- असमतल भूमि में अभिकल्पित जल वितरण पूरे क्षेत्रफल पर समान रहना चाहिए, अन्यथा फसल वृद्धि असमान ही रहेगी। ●

वस्त्र रंगाई करने की विभिन्न प्रकार की विधियाँ

✍ **निशा आर्य एवं ललिता रानी**
वस्त्र एवं परिधान अभिकल्पन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वस्त्रों को रंगने के लिए आज भी महिलाएँ परंपरागत तरीके से रंगाई करती हैं। परंपरागत तरीके से महिलाएं विभिन्न प्रकार के घरेलू वस्त्रों को बाज़ारों में उपलब्ध रंगों द्वारा रंगाई करती हैं। विश्व में रंगाई की कला बहुत पुरानी है। मिस्र में लगभग 3500 वर्ष पूर्व के नीले रंग के कपड़े मिले हैं। मिस्र में ही मकबरों में परिरक्षित शवों को लपेटने के लिए केसरी रंग के तथा नील से रंगे हुए नीले रंग के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। ऐसा माना जाता है कि सिकंदर काला, हरा तथा पीला रंग रंगने की कला को भारत से ग्रीस लेकर गया था। पूर्वकाल में वस्त्रों को रंगने की कला की जानकारी प्राप्त करने से पहले, मनुष्य अपने शरीर को विभिन्न रंगों द्वारा सजाया करता था।

रंगाई की अवस्थाएँ : वस्त्रों को रंगने की क्रिया, वस्त्र उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में की जाती है। ये अवस्थाएँ निम्न प्रकार से हैं :

रेशों की रंगाई : ऊन, रूई, लिनन तथा कच्ची रेशम के तंतुओं को इन विधि से रंगा जाता है। रेशों को रंग के घोल में डालकर अच्छी तरह हिलाया जाता है। रंग चढ़ने के पश्चात् रेशों को बर्तन में से निकाल कर, दबा-दबा कर फालतू रंग निकाल कर सुखाने के लिए डाला जाता है। संश्लेषित तंतुओं को रंगने के लिए रासायनिक घोल में रंग मिला दिया जाता है, इससे स्पिनरैट में से रंगदार रेशा बाहर निकलता है।

लच्छियों की रंगाई : सभी प्रकार के रेशों की लच्छियों को रंगा जा सकता है। इन लच्छियों को एक डण्डे पर टाँग कर रंग के बर्तन के ऊपर इस प्रकार रखते हैं कि लच्छियाँ रंग में डूब जाएँ। इस डण्डे को लगातार घुमाया जाता है जिससे लच्छियाँ पूरी तरह रंग सोख लेती हैं तथा फिर इन्हें सुखा दिया जाता है। घरेलू रंगाई में लच्छियों को रंग वाले बर्तन में डालकर रंगा जाता है।

तैयार वस्त्रों को रंगना : तैयार वस्त्रों को दो प्रकार से रंगा जा सकता है :

(i) **वस्त्र का रंगना :** इस प्रक्रिया में रंगने वाले वस्त्र को एक रोलर पर लपेट कर रंग के घोल के बर्तन में तब तक डाला जाता है, जब तक कपड़े पर रंग चढ़ न जाए। तैयार वस्त्रों को रंगने से रंग उतने पक्के नहीं चढ़ते, जितने कि पहली दोनों अवस्थाओं में चढ़ते हैं। ये रंग धुँधले भी पड़ जाते हैं, क्योंकि रंग वस्त्र की सतह पर ही रहता है तथा रेशों के अंदर तक प्रवेश नहीं कर पाता। इसका कारण है, कि वस्त्र की रंगाई में बुनाई तथा धागे की ऐंठन के कारण बाधा उत्पन्न होती है।

(ii) **क्रॉस रंगाई :** इस विधि से उन वस्त्रों को रंगा जाता है, जो दो प्रकार के धागों से बने होते हैं। इसलिए इन वस्त्रों को दो बार रंगा जाता है। पहली बार एक धागे के लिए आवश्यक रंग प्रयोग किया जाता है तथा दूसरी बार दूसरे धागे के लिए आवश्यक रंग का प्रयोग किया जाता है।

कपड़े को रंगने की विभिन्न विधियाँ : रंगाई की प्रक्रिया दो प्रकार से की जा सकती है :

1. साधारण रंगाई   2. अवरोधक रंगाई

1. साधारण रंगाई : साधारण रंगाई में वस्त्रों को बिना किसी अवरोधक के केवल रंगों के द्वारा ही रंगा जाता है। घरों में दरियाँ या खेस बनाने के लिए धागों को रंगना, दुपट्टों या ऐसे वस्त्रों को रंगना, जिनका रंग फीका पड़ गया हो, साधारण रंगाई में आता है। इसे घरेलू रंगाई भी कहते हैं।

साधारण अथवा घरेलू रंगाई का ढंग : घरेलू रंगाई करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए :

अ. रंगों का चुनाव : रंगों का चुनाव कपड़े के तंतुओं की प्रकृति तथा उसके प्रयोग के अनुसार करना चाहिए जैसे जान्तव तंतुओं के लिए अम्लीय रंग अच्छे होते हैं। सूती वस्त्रों के लिए गंधक रंग तथा वाट रंग अच्छे होते हैं। इन रंगों के प्रयोग के लिए निर्देश डिब्बों पर लिखे होते हैं जैसे कि उन पर लिखा होता है कि यह किस प्रकार का रंग है, किस प्रकार के वस्त्रों के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है तथा इसका घोल कैसे बनाना है इत्यादि। उन निर्देशों के अनुसार वस्त्रों को रंगना चाहिए। वनस्पति जन्य कपड़ों पर गहरा तथा पक्का रंग चढ़ाने के लिए रंगों को उबाला जाता है।

जन्तु जन्य कपड़ों पर रंग सरलता से चढ़ते हैं। अत: इन वस्त्रों को रंगने के लिए उबालना नहीं चाहिए। उबालने से इन वस्त्रों का प्राकृतिक तेल निकल जाता है तथा वस्त्र सिकुड़ कर खराब हो जाते हैं। सेल्यूलोज़ एसिटेट के लिए विशेष प्रकार के रंगों की आवश्यकता होती है। रेयॉन के वस्त्रों का सूती वस्त्रों के समान रंगों के प्रति बहुत कम आकर्षण होता है तथा उन पर रंग बहुत कम चढ़ते हैं।

रंगाई वाले वस्त्र की तैयारी : अगर सिले हुए वस्त्र को रंगना हो तो निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- बटन, लेस झालर, फर, ज़िप, रिबन, डोरियाँ तथा सजावट का दूसरा सामान उतार देना चाहिए।
- कपड़े पर लाइनिंग लगी हो तो उसे अलग कर देना चाहिए।
- कपड़े की प्लीट्स, चुन्नटें, तहें, उलेहड़ी तथा घेरे की सिलाइयाँ आदि भी खोल दें।
- वस्त्र को अच्छी तरह से धो दें, ताकि उसमें से मैल, स्टार्च तथा नील निकल जाए।
- यदि कपड़ा रंगदार हो तो उसे ब्लीच करके रंगें। ऐसा न करने से रंगाई के समय ठीक शेड न आने की संभावना बढ़ जाती है तथा धब्बे भी पड़ सकते हैं। कपास के तंतुओं के लिए सोडियम हाइपोक्लोराइट तथा जांतव तन्तुओं के लिए सोडियम हाइड्रोसलफाइट का प्रयोग करना चाहिए।

सामग्री तथा बर्तन : रंगों के पैकेट के ऊपर लिखे निर्देशों के अनुसार सामग्री लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रंगने के लिए एक चौड़ा तथा गहरा बर्तन, एक टब, एक छोटा प्याला, लकड़ी के दो चम्मच, रबड़ का ऐप्रन तथा दस्ताने, मलमल का टुकड़ा, पानी (आवश्यकता अनुसार गर्म या ठण्डा या दोनों) नमक तथा रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है।

रंग को घोलने की तैयारी : जिस वस्त्र को रंगना होता है, उसे थोड़ी देर के लिए फिटकरी वाले पानी में भिगोएँ। इससे कपड़े पर चमकदार रंग चढ़ता है। घोल तैयार करने के लिए धातु के बर्तनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि धातु तथा रंगों में रासायनिक क्रिया हो सकती है। इसके लिए एनेमल के बर्तन ठीक रहते हैं। बर्तन बड़ा होना चाहिए, ताकि उसमें रंग का घोल तथा कपड़ा आसानी से आ जाएँ। रंग का घोल तैयार करने के लिए रंग के पैकेट या डिब्बे के ऊपर दिए गये निर्देशों का पालन करें।

रंग का ठीक शेड उपलब्ध न होने पर दो या अधिक रंगों को मिलाया जाता है। रंग का एक सार घोल तैयार करने के लिए रंग के पाऊडर को मलमल की थैली में बाँध कर निर्देश अनुसार ठण्डे या गर्म पानी में तब तक हिलाया जाता है जब तक सारा रंग घुल न जाए। रंगे जाने वाले वस्त्र के अंदर वाले किसी भाग को या किसी अन्य वैसे ही वस्त्र के टुकड़े को, रंग में डुबो कर रंग का शेड चैक कर लेना चाहिए। शेड चैक करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पानी में खंगालने तथा सूखने के पश्चात् कपड़े का रंग एक शेड हल्का दिखाई देता है।

रंगने की विधि : वस्त्रों को रंगने के लिए ठण्डी या गर्म विधि का प्रयोग किया जाता है :

गर्म विधि : एनेमल को किसी गहरे तथा चौड़े बर्तन में पानी उबालने के लिए रखें। यदि इसमें 1 प्रतिशत से 4 प्रतिशत तक सोडा राख मिला दें तो कपड़े पर रंग जल्दी चढ़ जाता है। कपड़े को फिटकरी के घोल में डुबो कर निकाल लें तथा निचोड़ कर फटकार लें। अब इसे रंगाई वाले घोल में डाल दें। जब तक कपड़ा रंग के घोल में रहता है इसे लकड़ी के चम्मच से उलटते-पलटे रहें ताकि रंग एकसार चढ़े। जब कपड़े पर उचित शेड चढ़ जाए तो कपड़े को लकड़ी के चम्मचों की सहायता से निकाल कर टब में खंगालने के लिए डाल दें। पक्का तथा गहरा रंग चढ़ाने के लिए सूती कपड़ों के लिए एक गैलन पानी में एक बड़ा चम्मच नमक के हिसाब से मिलाएँ। ऊनी वस्त्रों के लिए एक गैलन पानी में एक चम्मच एसिटिक अम्ल अथवा दो चम्मच सिरका मिलाना चाहिए।

ठण्डी विधि : रंग को गुनगुने पानी में अच्छी तरह से घोल कर, इसे सामान्य पानी में डाल दें। आवश्यकता के अनुसार इसमें नमक या सिरका मिला दें। कपड़े को रंग के घोल में 15-20 मिनट तक पड़ा रहने दें। सोडे को गरम पानी में घोल कर रंग में मिला दें। कपड़े को बीच-बीच में हिलाते रहना चाहिए, ताकि सारे वस्त्र पर एक जैसा रंग चढ़े। रंग के पैकेट पर लिखे निर्देशों को अच्छी तरह से पढ़ें।

खंगालना तथा सुखना : रंगाई के पश्चात् वस्त्रों को ठण्डे पानी में तब तक खंगालते हैं, जब तक रंग निकलना बिल्कुल बंद न हो जाए। वस्त्रों को निचोड़ने के स्थान पर उन्हें दबा-दबा कर पानी निकालना चाहिए तथा उल्टा करके छाया में सूखने क लिए डालना चाहिए। बचे हुए रंग को तब तक फेंकना नहीं चाहिए जब तक वस्त्र पर ठीक शेड नहीं आ जाता।

परिसज्जा :

1. कपड़ों को थोड़ी गीली अवस्था में ही प्रैस कर लेना चाहिए। यदि कपड़ा प्रैस करने से पहले सूख जाता है, तो कपड़े पर मलमल का गीला कपड़ा बिछा कर प्रैस करनी चाहिए।
2. कपड़े को प्रैस करने वाले मेज़ को किसी पुराने कपड़े से ढक देना चाहिए, ताकि प्रैस करते हुए अगर रंग निकले तो नया कपड़ा या बोर्ड खराब न हो।
3. प्रैस तेज़ गर्म नहीं होनी चाहिए। इससे कपड़े का रंग खराब होने का डर रहता है।
4. कपड़े को उल्टी साइड से प्रैस करना चाहिए।

रंगाई में सामान्य दोष : प्राय: रंगाई में निम्नलिखित दोष देखे जा सकते हैं :

(1) **धब्बे तथा धारियाँ :** धब्बे तथा धारियाँ ऐसे रंगों से पड़ते हैं जो पूरी तरह से घुलनशील नहीं होते। इसके अतिरिक्त रंग में मिट्टी के धब्बे, वस्त्र पर या बर्तन में ग्रीज़ के निशान होना, वस्त्र पर पहले से कोई रंग चढ़ा होना, जो अब हल्का हो गया हो या रंगाई वाले बर्तन का वस्त्र के अनुपात में छोटा होना आदि कारणों से भी धब्बे तथा धारियाँ पड़ जाती हैं।

(2) **असमान रंगाई :** असमान रंगाई के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

1. कपड़े पर अगर पहले से कोई रंग चढ़ा हो और हम उसे ब्लीच करके पुन: किसी रंग में रंगना चाहते हैं किंतु पहला रंग पूरी तरह से ब्लीच न हो पाए तो उस कपड़े पर रंगाई असमान दिखाई देती है।
2. रंगाई के दौरान कपड़े को अच्छी तरह से न हिलाने से कपड़े में रंग समान रूप से प्रवेश नहीं कर पाता।
3. रंग या घोल की मात्रा आवश्यकता से कम होना तथा वस्त्र का उसमें पूरी तरह से न डूबना।
4. रंगाई का बर्तन आवश्यकता से छोटा होना।
5. कपड़ा पूरी तरह से गीला न होना।
6. रंगाई से पहले वस्त्र की प्लीट्स, चुन्नटें तथा तहें आदि पूरी तरह से न खोलना।
7. खंगालते समय या खंगालने के पश्चात् कपड़े को कस कर निचोड़ना।

घरेलू रंगाई करते समय सावधानियाँ :

(i) रंग को हमेशा थोड़े पानी में घोलें या मलमल की पोटली बनाएँ तथा इस बात का ध्यान रखें कि रंग अच्छी तरह से घुल जाए। यदि रंग के अघुलनशील कण घोल में रह जाएँगे तो कपड़े पर धब्बे व धारियाँ पड़ सकती हैं।

(ii) रंगाई के समय कपड़े को बीच-बीच में हिलाते रहें, ताकि रंगाई एकसार हो सके।

(iii) रंगाई वाले घोल में जब भी नमक, कोई रासायनिक पदार्थ या तेज़ाब डालना हो तो रंगाई वाले कपड़े को बाहर निकाल कर डालें।

(iv) रंगाई वाला कपड़ा साफ-सुथरा होना चाहिए। मैल, चिकनाई, चुन्नटों, तहों, प्लेटों आदि से कपड़ों की रंगाई ठीक नहीं होती तथा उन पर धब्बे व धारियाँ पड़ जाती हैं।

अवरोधक रंगाई : अवरोधक रंगाई सारे कपड़े पर नहीं की जाती। इस प्रकार की रंगाई से अभिप्राय उस रंगाई से है, जिसमें कपड़ों को रंगने के लिए उन्हें कुछ स्थानों पर बाँध दिया जाता है या कोई अवरोधक पदार्थ लगा दिया जाता है। इससे वस्त्र के उस स्थान पर रंग नहीं चढ़ता। कपड़ा सूखने के पश्चात्, जिस स्थान पर अवरोधक पदार्थ लगाया गया होता है, उस स्थान पर डिज़ाइन बन जाता है। यह रंगाई दो प्रकार की होती है :

क. बंधेज की रंगाई   ख. बाटिक की रंगाई

क. बंधेज की रंगाई : बंधेज अथवा कपड़ों को बाँधकर रंगने की कला राजस्थान तथा गुजरात में बहुत विकसित है। इसमें कपड़े को नमूने के अनुसार कई स्थानों से बाँध दिया जाता है। फिर कपड़े की रंगाई की जाती है। जिन-जिन स्थानों पर धागा बंधा होता है या गांठ लगी होती है, उन-उन स्थानों पर रंग नहीं चढ़ता। इस रंगाई में कई प्रकार के डिज़ाइन बनाए जाते हैं, जैसे कि बूंदी, लहरिया, जानवर, पक्षी, फूल, चौरस, तिरछे, मनुष्यों की आकृतियाँ, पेड़-पौधे आदि। यह रंगाई मुख्यत: पतले कपड़ों जैसे कैम्ब्रिक, सिल्क, मलमल, शिफोन आदि पर की जाती है। कपड़े को रंगने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए, ताकि उसकी माँड निकल जाए। कपड़े को बांधने के कई ढंग हैं, जैसे कि :

- कपड़े को नमूने के अनुसार इकहरा दोहरा या चार तहें करके बाँधना।
- कपड़े की तहों में किसी दाल, अनाज या चने का दाना या दाने डाल कर उसके इर्द-गिर्द धागा बाँधना।
- बारीक डिज़ाइन बनाने के लिए कपड़े पर कच्चा टांका करके धागा खींच लेना। इससे कपड़ा इकट्ठा हो जाता है तथा जिस स्थान से धागा खींचा जाता है, वहाँ रंग नहीं चढ़ता।
- कपड़े में सिक्के, पत्थर मोती आदि भी बाँधे जा सकते हैं।
- कपड़े पर इलास्टिक बैंड भी लगाए जा सकते हैं।

जब सारा वस्त्र बांधा जा चुका हो तब उसकी रंगाई करते हैं। रंग के पैकेट पर दिए गए रंगाई के निर्देशों को अच्छी तरह से पढ़ लेना चाहिए। रंगाई के पश्चात् धागों को खोल देते हैं। अगर दो या अधिक रंगों से वस्त्र रंगना हो, तो प्रत्येक रंगाई के पश्चात् डिज़ाइन के अनुसार कपड़े को फिर से बाँधा जाता है। सबसे पहले सबसे हल्का रंग, फिर मध्यम तथा फिर गहरा रंग किया जाता है। जब कपड़ा अच्छी तरह से सूख जाता है, तो धागे खोल देते हैं। गीले कपड़े के धागे खोलने से रंग एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जाते हैं। अधिक समय तथा मेहनत लगती है। यह रंगाई महँगी भी पड़ती है।

ख. बाटिक की रंगाई : इस रंगाई में वस्त्र पर अवरोधक पदार्थ लगाकर वस्त्र को रंगा जाता है। अवरोधक लगे स्थानों पर रंग नहीं चढ़ता। बाटिक मुख्यत: पतले कपड़ों पर की जाती है, जैसे कि सूती कपड़ा, लिनन, सिल्क, आरकंडी आदि। इसके लिए नायलोन मिश्रित तथा संश्लेषित वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि गर्म मोम से ये वस्त्र पिघल जाते हैं। बाटिक के लिए सफेद वस्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। सफेद वस्त्र पर सभी रंग आसानी से चढ़ जाते हैं। जिस कपड़े पर रंगाई करनी हो, उस कपड़े को अच्छी तरह से धोकर उसकी माँड निकाल देनी चाहिए। फिर उस कपड़े को अच्छी तरह से रंगाई करके उसके ऊपर डिज़ाइन ट्रेस करना चाहिए। डिज़ाइन बहुत बारीक नहीं होना चाहिए। बहुत बारीक नमूने पर मोम लगाना मुश्किल होता है। पैराफिन मोम तथा मधुमक्खियों की मोम का 4 : 1 भाग अवरोधक पदार्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है। धारियाँ अधिक डालनी हों तो यह अनुपात 6 : 1 भी लिया जा सकता है।

मोम को किसी बर्तन में डालकर हल्की आग पर गर्म किया जाता है। मोम के बर्तन को तवे या किसी अन्य वस्तु पर रखकर गर्म करना चाहिए। मोम को आग पर सीधा गर्म करने से मोम आग पकड़ सकती है। कपड़े को किसी कढ़ाई वाले फ्रेम में लगाकर या किसी सख्त सतह पर रखकर पेंटिंग ब्रुश की सहायता से पिघली हुई मोम, कपड़े के उन हिस्सों पर लगाई जाती है, जिन पर रंग नहीं करना होता। मोम कपड़े पर रंग चढ़ने नहीं देती। रंगाई से पूर्व पूरे कपड़े को ठण्डे पानी में भिगो दिया जाता है। ताकि मोम जमकर सख्त हो जाए।

बाटिक की रंगाई के लिए विशेष विकसित रंगों का प्रयोग किया जाता है। यह रंगाई ठण्डे पानी में की जाती है क्योंकि गर्म पानी में मोम पिघल जाएगा। कपड़े को पहले बेस में तथा फिर नमक के घोल में डाला जाता है। नमक के घोल में डालते ही वस्त्र पर रंग दिखने लगता है। कपड़े को हल्के से निचोड़ लिया जाता है, ताकि फालतू रंग निकल जाए। एक से अधिक रंगों का प्रयोग करना हो तो पहले हल्का रंग, फिर मध्यम रंग तथा आखिर में सबसे गहरे रंग में रंगना चाहिए। प्रत्येक रंगाई के पश्चात् जहाँ रंग बांधना होता है, वहाँ फिर से मोम लगा दी जाती है। रंगाई के पश्चात् वस्त्र को ठण्डे पानी से अच्छी तरह खंगाल कर फालतू रंग निकाल देते हैं तथा छाया में सुखा देते हैं।

कपड़े पर से मोम उतारने के लिए मोम को चाकू या किसी अन्य ऐसी ही वस्तु से खुरचा जाता है। बाद में कपड़ों को पेट्रोल से धोकर सारी मोम उतार दी जाती है तथा वस्त्र को छाया में सुखाया जाता है। अंत में अखबार की दो तहों में कपड़े को रख कर ऊपर से गर्म इस्त्री की जाती है। इस तरह बची हुई मोम भी अखबार के द्वारा चूस ली जाती है तथा कपड़ा बिल्कुल मोम रहित हो जाता है। यह रंगाई भी आम रंगाई की अपेक्षा अधिक महँगी है, तथा इसमें समय व मेहनत भी अधिक लगती है। ●

आजीवन सदस्यों के लिए आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' के पंजीकृत सभी आजीवन सदस्यों को यह सूचित किया जाता है कि हम मासिक पत्रिका ''**हरियाणा खेती**'' की आजीवन सदस्यता को पंजाब कृषि विश्वविद्यालय की तर्ज पर (30 वर्ष की अवधि) के लिए कर रहे हैं। जिन पंजीकृत सदस्यों की सदस्यता को 30 वर्ष या इससे अधिक हो चुके हैं उन्हें हम हरियाणा खेती पत्रिका नहीं भेज पाएंगे। जिन सदस्यों की सदस्यता समाप्त हो रही है वे 1500 रुपये आजीवन (30 वर्ष के लिए) या 150 रुपये वार्षिक देकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा सकते हैं। **-सह-निदेशक प्रकाशन**

बायोगैसः अपशिष्ट से ऊर्जा

✍ **पवन कुमार, राज कुमार[1] एवं नरेन्द्र कुमार[2]**
विस्तार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बायोगैस एक गैसों का मिश्रण है जो कि कार्बनिक पदार्थों के हवा की अनुपस्थिति में टूटने से उत्पन्न होती है, इसमें मुख्य रूप से मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड होती है। बायोगैस का उत्पादन करने के लिए कृषि अपशिष्ट, खाद, नगरपालिका अपशिष्ट, पौध सामग्री, सीवेज, हरे कचरे या खाद्य अपशिष्ट को कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

बायोगैस के गुण : बायोगैस विभिन्न घटकों का मिश्रण है जिसकी संरचना फीड सामग्री, गिरावट की मात्रा आदि की विशेषताओं पर निर्भर करती है। बायोगैस में मुख्य रूप से 50 से 70 प्रतिशत मीथेन, 30 से 40 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड और कुछ अन्य गैसें होती हैं। मिथेन एक दहनशील गैस है। बायोगैस की ऊर्जा सामग्री इसमें शामिल मीथेन की मात्रा पर निर्भर करती है।

बायोगैस संयंत्र और उसके घटक : जैविक सामग्री के अवायवीय पाचन को पूरा करने के लिए तैयार की गई एक शारीरिक संरचना को 'बायोगैस संयंत्र' कहा जाता है। बायोगैस संयंत्रों के घटक निम्नलिखित हैं :

- *मिक्सिंग टैंक :* गाय के गोबर को शेड से इकट्ठा किया जाता है और पानी में समान अनुपात (1:1) के साथ मिलाकर मिक्सिंग टैंक में एक समरूप मिश्रण (घोल) बनाया जाता है।
- *फीड इनलेट पाइप या टैंक :* इस इनलेट पाइप (केवीआईसीबायोगैस प्लांट) या टैंक (जनता बायोगैस प्लांट) के माध्यम से समरूप घोल को डाइजेस्टर में जाने दिया जाता है।
- *डाइजेस्टर :* खिलाया हुआ घोल डाइजेस्टर के अंदर भेजा जाता है, जहां सूक्ष्मजीवों की मदद से अवायवीय किण्वन किया जाता है।
- *गैस धारक :* अवायवीय किण्वन के परिणामस्वरूप, उत्पादित गैस को गैस धारक (केवीआईसी के मामले में ड्रम में और गुंबद में तय गुंबद बायोगैस पौधों के मामले में) में संग्रहीत किया जाता है।
- *स्लरी आउटलेट टैंक या पाइप :* डाइजेस्ट स्लरी को डाइजेस्टर से स्लरी आउटलेट पाइप (केवीआईसीबायोगैस प्लांट्स) या टैंक (जनता बायोगैस प्लांट्स) के माध्यम से निकलने दिया जाता है।
- *गैस आउटलेट पाइप :* गैस धारक के शीर्ष पर मौजूद गैस आउटलेट पाइप के माध्यम से संग्रहीत गैस को जारी और संप्रेषित किया जाता है।

बायोगैस उत्पादन का सूक्ष्म जीव विज्ञान : अवायवीय स्थिति के तहत जैविक सामग्री से बायोगैस के उत्पादन में सूक्ष्मजीवी प्रतिक्रियाओं का अनुक्रम शामिल है। इस प्रक्रिया के दौरान बायोमास में मौजूद जटिल कार्बनिक अणु, अम्ल पैदा करने वाले बैक्टीरिया द्वारा चीनी, शराब, कीटनाशक और अमीनो एसिड में टूट जाते हैं। परिणामी उत्पादों को तब बैक्टीरिया की एक अन्य श्रेणी द्वारा मीथेन का उत्पादन करने के लिए उपयोग किया जाता है। बायोगैस उत्पादन प्रक्रिया में तीन चरण मुखयत: शामिल हैं :

- हाइड्रोलिसिस
- एसिड का निर्माण
- मीथेन का निर्माण

हर चरण में कार्बनिक पदार्थों के क्षरण की प्रक्रिया, बैक्टीरिया द्वारा की जाती है, जो कि मध्यवर्ती उत्पादों को तोड़ने में विशेष होते हैं। पाचन की दक्षता इस पर निर्भर करती है कि इन तीन चरणों में पाचन कितनी दूर होता है। बेहतर पाचन मतलब कमअवधारण समय और कुशल गैस उत्पादन ।

हाइड्रोलिसिस : सेल्यूलोसिक बायोमास में पाए जाने वाले जटिल कार्बनिक अणु जैसे कि वसा, स्टार्च और प्रोटीन जो पानी में अघुलनशील होते हैं, बैक्टीरिया द्वारा स्रावित एंजाइम की मदद से सरल यौगिकों में टूट जाते हैं। यह चरण पोलीमर टूटने की अवस्था (पोलीमर से मोनोमर) के रूप में भी जाना जाता है। प्रमुख अंत उत्पाद ग्लूकोज़ है जो एक साधारण उत्पाद है।

एसिड का निर्माण : हाइड्रोलिसिस चरण में प्राप्त परिणामी उत्पाद (मोनोमर्स) एसिड गठन चरण बैक्टीरिया के लिए इनपुट के रूप में काम करता है। पिछले चरण में उत्पादित उत्पादों को विभिन्न एसिड बनाने के लिए अवायवीय स्थितियों के तहत किण्वित किया जाता है। इस चरण के अंत में उत्पादित प्रमुख उत्पाद एसिटिक एसिड, प्रोपियोनिक एसिड, ब्यूटिरिक एसिड और इथेनॉल हैं।

मीथेन का निर्माण : पिछले चरणों में उत्पादित एसिटिक एसिड, सूक्ष्मजीवों के एक समूह द्वारा मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है जिसे 'मेथनोजनस' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, यह मेथनोजनस द्वारा मीथेन के उत्पादन की प्रक्रिया है। वे अनिवार्य अवायवीय हैं और पर्यावरण परिवर्तनों के प्रति बहुत संवेदनशील हैं। मेथनोजनस पूर्ववर्ती चरणों के मध्यवर्ती उत्पादों का उपयोग करते हैं और उन्हें मीथेन, कार्बन डाइऑक्साइड और पानी में परिवर्तित करते हैं। यह वे घटक हैं जो सिस्टम से उत्सर्जित बायोगैस के अधिकांश भाग को बनाते हैं। मेथानोजेनेसिस पीएच 6.5 और पीएच 8 के बीच होता है, यह उच्च और निम्न दोनों पीएच के लिए संवेदनशील है।

बायोगैस प्लांट में गीले जैविक कचरे से स्वच्छ ईंधन का उत्पादन करने की बहुत अधिक संभावना है। कई ग्रामीण और बाहरी-शहरी क्षेत्र हैं जहां पारंपरिक गोबर आधारित संयंत्रों का उपयोग किया जा सकता है। कस्बों और शहरों में और भी अधिक संभावनाएं हो सकती हैं, जहां कचरा निपटान और स्वच्छता एक बड़ी चुनौती बनती जा रही है क्योंकि लोगों का शहरी क्षेत्रों में बढ़ते जाना एक समस्या बन रही है। बिजली उत्पादन के लिए और गैस ग्रिड की आपूर्ति के लिए बड़े संयंत्रों के उपयोग में भी रुचि बढ़ रही है।

लाभ :

- बायोगैस संयंत्र अवायवीय पाचन पर निर्भर करते हैं, एक किण्वन प्रक्रिया जिसमें मीथेन गैस (बायोगैस) का उत्पादन करने के लिए अपशिष्ट को सूक्ष्मजीवों द्वारा पचाया जाता है। कचरे को बायोफर्टिलाइज़र में परिवर्तित किया जा सकता है और सीधे खेतों में प्रयोग किया जा सकता है या बायोगैस को ईंधन के रूप में प्राकृतिक गैस के साथ परस्पर उपयोग किया जा सकता है।

[1]सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]मृदा एवं जल अभियांत्रिकी, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

- सेट-अप की कम लागत और अपशिष्ट पदार्थों की उपलब्धता के कारण बायोगैस ग्रामीण या गरीब क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है। प्रक्रिया में लगभग किसी भी जैविक कचरे का उपयोग किया जा सकता है।
- यह इस तथ्य के कारण एक अक्षय ऊर्जा विकल्प के रूप में उद्धृत किया गया है कि यह शून्य-उत्सर्जन प्रक्रिया है। बायोगैस संयंत्र मीथेन उत्सर्जन पर कब्ज़ा करके, ग्रीनहाऊस प्रभाव को रोकने और वातावरण में फैली हानिकारक गैसों की मात्रा को कम करने के काम आते हैं।
- इसके अतिरिक्त, बायोगैस प्राकृतिक सामग्रियों पर निर्भर करती है जिन्हें दोहराया या पुन: उत्पन्न किया जा सकता है, इस प्रकार यह एक स्थायी पद्धति है।

बायोगैस का उपोत्पाद, समृद्ध कार्बनिक पदार्थ होता है, जो रासायनिक उर्वरकों के लिए एक सही पूरक है, या इसके विकल्प हैं, जो अक्सर विषाक्त और हानिकारक प्रभाव डालते हैं। इसके विपरीत, जैविक पदार्थ पौधों की वृद्धि और रोगों के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ा सकता है।

हानि :

- इसकी लागत अधिक है, क्योंकि लागत स्टील और सीमेंट पर निर्भर है।
- हीट गैस धारक की मेटल के माध्यम से खो जाती है।
- स्थान की नमी के आधार पर, साल में एक या दो बार गशॉल्डर को पेंटिंग की आवश्यकता होती है।
- लचीले पाइप जोकि गशॉल्डर को मुख्य गैस पाइप से जोड़ता है, को रख रखाव की आवश्यकता होती है, क्योंकि सूर्य में पराबैंगनी किरणें इसे नुकसान पहुंचाती हैं।

निष्कर्ष :

1. बायोगैस आधारित ऊर्जा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए स्थायी समाधान प्रदान कर सकती है।
2. जैसा कि अर्थशास्त्र आकर्षक है, यह एक गुणा और स्केलेबल मॉडल बन जाता है।
3. ऊर्जा की आपूर्ति ग्रामीण व्यवसायों और उद्यमों को बढ़ने और समृद्ध करने में मदद करेगी।
4. जैविक उर्वरकों के उत्पादन और उपयोग से मिट्टी में सुधार होगा और पैदावार बढ़ेगी।
5. इस तरह की परियोजनाओं के माध्यम से सब्सिडी बिल और विदेशी मुद्रा बहिर्वाह में उल्लेखनीय बचत हासिल की जा सकती है।
6. यह परियोजना स्थानीय रोज़गार के अवसर पैदा करके रोज़गार सृजन में मदद करेगी।
7. ईंधन और ऊर्जा की उपलब्धता के माध्यम से, क्षेत्र में समग्र स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार होगा। ●

(पृष्ठ 20 का शेष)

मशरूम में लगने वाली मक्खियों के प्रबंधन के लिए कुछ सावधानियां अपना सकते हैं :

- साफ सफाई
- दरवाज़े एवं खिड़कियों में जाली
- पीला व बैंगनी बल्ब/चिपचिपी पट्टियां
- ज़हर आकर्षण (Baygon)

उपचार के तरीके

स्पानिंग के 7 दिन बाद क्यारियों को 3 मि.ली. मेलाथियान/10 लीटर घोल का छिड़काव करें।

- मशरूम में अगर मक्खियों का प्रकोप हो तो 4 ग्राम डिमिलिन/10 लीटर पानी का छिड़काव करें।
- कीटनाशकों का प्रयोग बदल-बदल कर करें। पूरा उत्पादन लेने के बाद कम्पोस्ट को कक्ष से दूर गड्ढे में डालकर मिट्टी मे दबा दें।

माईट : माईट कवक जाल को खाते हैं और मशरूम के तने एवं टोपियों पर धब्बे या छिद्र बना देते हैं। कुछ केसिंग मिश्रण के नीचे फैल रहे कवक जाले को खाते हैं। कई बार यह मशरूम जड़ को खाना शुरू कर देते हैं।

प्रबन्धन :

- खाद व केसिंग मिश्रण का पास्चुरीकरण सही से करें।
- उत्पादन कक्ष की छत, फर्श व दीवारों को डाइकोफोल 0.1 प्रतिशत घोल से उपचारित करें।
- खाली उत्पादन कक्ष में 250-300 ग्राम सल्फर जलाएं। फसल का प्रकोप दिखाई देने खाद पर डाईजीनान 20 ई.सी. कीटनाशक का 1.5-2.0 मि.ली./10 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

स्प्रिंग टेल्स : ये मशरूम के कवक जाल को खाते हैं जिससे मशरूम कलिकाओं की बढ़ोत्तरी रुक जाती है और मशरूम के ऊपर छोटे-छोटे गड्ढे बन जाते हैं। ये कीट बटन मशरूम से ज़्यादा ढींगरी को क्षति पहुंचाते हैं और तने के आधार पर इकट्ठे हो कर कवक जाल को खाना शुरू करते हैं।

प्रबन्धन

- उत्पादन कक्ष के आस-पास सफाई रखें।
- मशरूम, फर्श से थोड़ा ऊपर लगाएं।
- कम्पोस्ट का पास्तूरीकरण/निरोगीकरण ठीक से करें। प्रभावित स्थान को मेलाथियान की 0.05 प्रतिशत से उपचारित करें। ●

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

फसल-अवशेष के प्रभाव एवं प्रबंधन

✍ नरेंद्र, रोहतास कुमार एवं धीरज पंघाल
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसल-अवशेष पौधे का वह भाग होता है जो फसल की कटाई और गहाई के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है। भूसा, तना, डंठल, पत्ते व छिलके आदि फसल-अवशेष कहलाते हैं। सरसों, गेहूं, धान, ग्वार, मूँग, बाजरा, गन्ना व अन्य दूसरी फसलों से काफी मात्रा में फसल-अवशेष मिलते हैं। सबसे अधिक फसल-अवशेष अनाज वाली फसलों में तथा सबसे कम अवशेष दलहनी फसलों से मिलते हैं। भारत में अधिकांश किसान एक फसल के बाद दूसरी फसल की जल्दी बुवाई करने के लिए पहली फसल के अवशेषों को खेत में जला देते हैं। फसल अवशेषों को जलाए जाने से न केवल मृदा की उर्वरा शक्ति में कमी आती है बल्कि अवशेषों से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचता है। यदि फसल अवशेषों का उचित प्रबंध कर उसे खाद के रूप में परिवर्तन कर दिया जाए तो जहाँ एक ओर इससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार होगा वहीं दूसरी ओर महंगे रासायनिक उर्वरकों के खर्च में भी कटौती होगी। फसलों के अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तना, पत्तियों में संचित लाभदायक पोषक-तत्व नष्ट हो जाते हैं। जहाँ पर कम्बाईन का प्रयोग फसलों की कटाई में करते हैं वहाँ पर फसलों के अवशेष डण्ठल के रूप में खड़े होते हैं एवं उनके जलाने पर आस-पास के किसानों की फसलों में आग लगने की संभावना बनी रहती है जिससे खड़ी फसल एवं आबादी में अग्निकाण्ड होने की संभावना बनी रहती है, वहीं आस-पास के खेत व खलिहान तथा मकान में भी अग्निकाण्ड के कारण अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

फसल-अवशेष का प्रभाव

मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव फसल : अवशेषों को जलाने के कारण मृदा ताप में वृद्धि होती है। जिसके फसलस्वरूप मृदा की ऊपरी सतह के कठोर होने की संभावना बढ़ जाती है। साथ ही मृदा जलधारण क्षमता में कमी आती है तथा मृदा में वायु-संचरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की कमी : फसल अवशेषों को जलाने के कारण मृदा में उपस्थित मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता में कमी हो जाती है।

मृदा में उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ में कमी : फसल-अवशेष जलाने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी हो जाती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी होने से मृदा में जीवनयापन करने वाले लाभकारी सूक्ष्म जीवों की संख्या में कमी हो जाती है।

वायु प्रदूषण : खेतों में फसल-अवशेषों को जलाने के कारण अत्यधिक मात्रा में वायु प्रदूषण होता है। साथ ही ग्रीन हाऊस गैसें जैसे- कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड आदि का उत्सर्जन ग्लोबल वार्मिंग के लिए भी उत्तरदायी होता है।

जानवरों के लिए चारे की कमी : फसल-अवशेषों को पशुओं के लिए सूखे चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है अत: फसल-अवशेषों को जलाने से पशुओं को चारे की कमी का सामना करना पड़ता है।

फसल-अवशेष प्रबंधन : फसल पारिस्थितिकी में पोषक तत्वों का पुन: चक्र एक आवश्यक घटक है। यदि किसान उपलब्ध फसल-अवशेषों को जलाने की बजाए उनको वापिस भूमि में मिला देते हैं तो निम्न लाभ प्राप्त होते हैं :

- *कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि -* कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1.29 गुणा अन्य फसल अवशेष होते हैं। ये खेत में गल-सड़कर मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं।
- *पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि -* फसल अवशेषों में लगभग 0.45 प्रतिशत नाइट्रोजन के साथ-साथ सभी आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं।
- *मृदा के भौतिक गुणों में सुधार -* मृदा में फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढने से मृदा की ऊपरी सतह की कठोरता कम होती है तथा जलधारण क्षमता एवं मृदा में वायु-संचरण में वृद्धि होती है।
- *मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार -* फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रासायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार होता है।
- *फसल उत्पादकता में वृद्धि -* फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है। अत: मृदा स्वास्थ्य पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए फसल अवशेषों को जलाने की बजाए भूमि में मिला देने से काफी लाभ होता है।

फसल-अवशेष के प्रबंधन

मृदा को स्वस्थ रखने के लिए फसल-अवशेषों का पुन: चक्रण, भूमि में सीधा मिलाकर सड़ा-गला देने से पोषक तत्वों की उपलब्धता तो बढ़ती ही है साथ ही इसका मिट्टी के गुणों पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। फसल-अवशेषों को उचित तरीके से प्रबंधन करने पर फसलों को मुख्य और सूक्ष्म पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। फसल कटाई के उपरांत खेतों में पड़े पैरा या भूसा आदि को गहरी जुताई कर ज़मीन में दबा देने और उसमें पानी भर देने से फसल-अवशेष कम्पोस्ट में बदल जाते हैं। फसल की कटाई के बाद खेत में बचे अवशेष घास-फूस, पत्तियां व ठूंठ आदि को सड़ाने के लिये फसल को काटने के पश्चात 20-25 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़क कर कल्टीवेटर या रोटावेटर से काटकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। इस प्रकार अवशेष खेत में विघटित होना प्रारम्भ कर देंगे तथा लगभग एक माह में स्वयं सड़कर आगे बोई जाने वाली फसल को पोषक तत्व प्रदान कर देंगे क्योंकि कटाई के पश्चात दी गई नाइट्रोजन अवशेषों में सड़न की प्रक्रिया को तेज़ कर देते हैं। अगर फसल-अवशेष खेत में ही पड़े रहे तो फसल बोने पर जब नई फसल के पौधे छोटे रहते हैं तो वे पीले पड़ जाते हैं क्योंकि उस समय अवशेषों के सड़ाने में जीवाणु भूमि की नाइट्रोजन का उपयोग कर लेते हैं तथा प्रारम्भ में फसल पीली पड़ जाती है। अत: फसल अवशेषों का प्रबंध करना अत्यंत आवश्यक है तभी हम अपनी ज़मीन में जीवांश पदार्थ की मात्रा में वृद्धि कर ज़मीन को खेती योग्य रख सकते हैं। फसल अवशेषों से बोर्ड बनाने के साथ-साथ इसका उपयोग कागज़ और

(शेष पृष्ठ 29 पर)

यूरिया-शीरा-खनिज ब्लॉक : पोषक तत्वों का भण्डार

सज्जन सिंह, रेखा दहिया[1] एवं राजेन्द्र सिंह[2]
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

यूरिया शीरा खनिज ब्लॉक पौष्टिक तत्वों का एक ठोस रूप है जिससे पशु को ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज आदि पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं। अत: पशु फसल अवशेषों को अधिक मात्रा में खाते हैं और अधिक मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। ब्लॉक चाटने से पशु की 80 से 90 प्रतिशत ऊर्जा और प्रोटीन की आवश्यकता पूरी हो सकती है जबकि खनिज की 100 प्रतिशत आवश्यकता पूरी हो जाती है।

ब्लॉक बनाने की विधि : यूरिया शीरा खनिज ब्लॉक को मशीनों की सहायता से बनाया जा सकता है। अगर मशीन उपलब्ध नहीं हो तो भी इसको हाथ से बनाया जा सकता है। एक बड़े बर्तन–कड़ाही में तालिका अनुसार खाद्य पदार्थ लें:

ब्लॉक के घटक	मात्रा
शीरा	50 कि.ग्राम
यूरिया	6 कि.ग्राम
कैल्शियम ऑक्साइड (चूना)	6 कि.ग्राम
फॉस्फोरिक एसिड	1 कि.ग्राम
पिसी हुई खल (सरसों/मूँगफली)	10 कि.ग्राम
जौ/तेल रहित चावल का चोकर/पिसी मक्का/पिसा गेहूँ	21 कि.ग्राम
खनिज मिश्रण	6 कि.ग्राम

यूरिया, शीरा तथा चूने को अच्छी तरह से मिलाएं, इसके बाद इसमें फॉस्फोरिक एसिड डालकर अच्छी तरह से मिला लें। इस दौरान होने वाली रासायनिक क्रिया से काफी ऊर्जा उत्पन्न होगी और जैल सा बनता हुआ महसूस होगा। यह जैल व ऊर्जा उत्सर्जन ब्लॉक को सख्त बनाने में काम आती है। एक दूसरे बर्तन या पक्के फर्श पर पिसी हुई खल (सरसों या मूंगफली) लो और इसमें खनिज मिश्रण व ऊर्जा के स्रोत जैसे – जौ/तेल रहित चावल का चोकर/पिसी हुई मक्की/गेहूँ इत्यादि को अच्छी तरह मिला लें। दोनों बर्तनों के घटकों को अच्छी तरह से मिलाकर एक समरूप मिश्रण तैयार करें। इसके बाद इस मिश्रण को जिस भी आकार व आकृति के ब्लॉक बनाने हों उसी प्रकार के सांचों में खूब दबाकर भरा जाता है और एक दिन के बाद इन सांचों से निकाला जाता है और एक सप्ताह तक सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है।

ब्लॉक बनाने में सावधानियाँ:

- सभी घटकों को अच्छी तरह मिलाना चाहिए।
- इसमें बिनौले की खल व गेहूँ के चोकर का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- ब्लॉक की आकृति ऐसी हो कि उसमें कोने कम से कम हों।

[1]पशु विज्ञान केन्द्र, पलवल
[2]पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक

ब्लॉक खिलाने की विधि:

- ब्लॉक को खोर में पशु के सामने किसी प्लास्टिक या लोहे के बर्तन में रख देना चाहिए ताकि पशु उसे जब चाहे, जितना चाहे चाट सके।
- अगर शुरू में पशु इसे कम चाटे तो इसके ऊपर आटा या दाना इत्यादि डालें ताकि पशु के चाटने की आदत बने।
- पशु को काफी मात्रा में सूखा चारा व पानी उपलब्ध करायें।
- शुरू में पशु ब्लॉक को कम मात्रा में चाट सकता है इसलिए ब्लॉक को उसके आगे से न हटाएं।
- पशुओं द्वारा ब्लॉक का चाटना उसकी सख्ती पर भी निर्भर करता है। यदि ब्लॉक बहुत अधिक सख्त है तो भी उसका चाटना कम होगा। इस सख्ती को कैल्शियम ऑक्साइड का स्तर कम करके या शीरा का स्तर बढ़ाकर ठीक किया जा सकता है।
- बड़े पशु 800–1000 ग्राम तक व बढ़ते हुए पशु 500 ग्राम तक ब्लॉक प्रतिदिन चाट सकते हैं।

ब्लॉक खिलाने के लाभ:

- इसे खिलाने से पशु फसल अवशेष अधिक मात्रा में खाते हैं।
- ब्लॉक खिलाने से पशुओं में अधिक वृद्धि होती है।
- पशुओं में खनिज पदार्थों की कमी पूरी करता है।
- ब्लॉक खिलाने से कुछ भाग दाना मिश्रण या खल आदि को कम किया जा सकता है।
- ठोस विधि द्वारा तैयार ब्लॉक कम पानी सोखता है इसलिए इसका लंबे समय तक भण्डारण किया जा सकता है।
- कम खर्च में अधिक पशु उत्पादन होता है।
- ब्लॉक के द्वारा हम पशु उत्पादन में यूरिया का बेहतरीन इस्तेमाल कर सकते हैं।
- जहाँ पर हरे चारे की कमी हो वहाँ सूखे चारे व फसल अवशेषों के साथ ये ब्लॉक बहुत ही लाभप्रद है। ●

(पृष्ठ 28 का शेष)

पैकेजिंग मैटीरियल तैयार करने तथा पशुओं के चारे के रूप में भी किया जा सकता है। इसका उपयोग एथेनॉल तथा ऊर्जा उत्पादन में कच्चे माल के रूप में भी किया जा सकता है।

निष्कर्ष: देश के किसानों को अपनी मृदा की सेहत, अपनी व पशुओं की सेहत का ख्याल रखने और सामाजिक व राष्ट्रीय दायित्व के निर्वाह के लिए फसल अवशेषों के प्रबन्धन का समुचित उपाय करना चाहिए। अत: प्रदेश के कृषकों से अनुरोध है कि किसी भी फसल के अवशेष को जलायें नहीं बल्कि मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि हेतु पादप अवशेषों को मृदा में मिलाएं। फसलों की कटाई यदि कम्बाईन मशीन से की जाती है तो किसान रीपर युक्त कम्बाईन मशीन का ही प्रयोग करें। ●

सिंचाई की विभिन्न विधियां तथा इसके लाभ

अजित सांगवान, रवि[1] एवं रवि[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

हरियाणा एक कृषि प्रधान राज्य है। किसी भी राज्य की प्रगति उसकी खेती पर निर्भर करती है। हरियाणा राज्य एक प्रगतिशील प्रदेश है। यहां पर खेती एक मुख्य व्यवसाय है। यहां रबी, खरीफ व जायद ऋतु की फसलें ली जाती हैं। फसलों की अधिक पैदावार के लिए पानी की सही मात्रा सही समय पर बहुत आवश्यक है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण मौसम में बहुत परिवर्तन हो रहा है। वर्षा में पहले के मुकाबले कमी आई है व तापमान में भी वृद्धि हुई है। इसकी वजह से पानी की उपलब्धता में कमी हुई है। इन सभी कारणों से फसलों के लिए पानी प्रति इकाई क्षेत्र अधिक खर्च करना पड़ता है। मौसम परिवर्तन को देखते हुए हमें आज के समय पानी को बचाने व इसके सही उपयोग के लिए नीचे दी हुई विभिन्न सिंचाई की विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

(क) टपका (ड्रिप) विधि : टपका सिंचाई आज कल एक महत्वपूर्ण विधि है। टपका सिंचाई में हम बूंद-बूंद का उपयोग करते हैं। टपका सिंचाई पानी को पौधों की जड़ों के पास प्लास्टिक की पाइप के द्वारा उसमें ड्रिपर लगाकर बूंद-बूंद करके पहुंचाते हैं। इस विधि को सभी प्रकार की सब्जियों तथा फल-फूलों वाली फसलों में लगाया जा सकता है। टपका विधि में जल की मात्रा बरबाद नहीं होती व 75 से 80 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है। ड्रिपर का चुनाव पानी के फसलों में उपयोग के अनुसार करना चाहिए। सब्जियों व फूल की फसलों में कम बूंद वाले ड्रिपर व बागवानी की फसलों में अधिक बूंद वाले ड्रिपर उपयोग करते हैं। ड्रिपर का उपयोग पानी के दबाव व सिंचित क्षेत्रफल पर भी निर्भर करता है।

टपका सिंचाई के लाभ :

- इस विधि का प्रयोग करके हम पानी, खाद, ऊर्जा व लेबर बचा सकते हैं।
- इस विधि के प्रयोग से फसल की पैदावार तथा गुणवत्ता बढ़ा सकते हैं।
- इस विधि का प्रयोग करके मिट्टी में हवा का संचार अच्छे से हो जाता है।
- इस विधि का प्रयोग करने से कीट-पतंगे तथा खरपतवार में कमी आती है।
- इस विधि का प्रयोग करने से हम खारे पानी के साथ नहर का पानी मिलाकर प्रयोग कर सकते हैं।
- इस विधि का प्रयोग करने से फसल परिपक्वता में समय कम लगता है।
- इस विधि को कम्प्यूटर से जोड़कर स्वचालित किया जाता है।

(ख) फव्वारा (स्प्रिंकलर) विधि: फव्वारा सिंचाई विधि में पानी को बारिश के रूप में फसलों को दिया जाता है। इस विधि से परंपरागत सिंचाई से होने वाले पानी के नुकसान से बचा जा सकता है। इस विधि से पानी की 35 से 40 प्रतिशत तक की बचत होती है। फव्वारा सिंचाई विधि में पानी की बूंदें भूमि की सतह पर गिरती हैं। जिससे पानी फसलों की आवश्यकता के हिसाब से दिया जा सकता है। आजकल विभिन्न प्रकार के फव्वारे बाज़ार में उपलब्ध हैं जिनमें पानी की बूंदों के आकार को क्षेत्रफल के अनुरूप लगा सकते हैं।

फव्वारा सिंचाई विधि सभी तरह के खेतों में लगाई जा सकती है। ऊंचे-नीचे, ढलान वाले खेत व पहाड़ी क्षेत्रों में भी इसका आसानी से उपयोग किया जा सकता है। यह तकनीक अधिकतर बालू मिट्टी वाले क्षेत्र में उपयोगी है। क्योंकि वहां पानी रेतीली मिट्टी में सतह पर इकट्ठा नहीं होता है। इस सिंचाई विधि को हम हर प्रकार की मिट्टी में उपयोग कर सकते हैं।

फव्वारा सिंचाई में फसलों को पानी देने के लिए फव्वारे लगे होते हैं। टपका विधि में फसलों को पानी देने के लिए ड्रिपर लगे होते हैं। दोनों सिंचाई विधियों के भागों का वितरण इस प्रकार है :

(1) जल स्रोत: सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में जल स्रोत साफ व गंदगी रहित होना चाहिए। अन्यथा सिंचाई व्यवस्था अवरुद्ध हो जाएगी व समय भी नष्ट होगा। कुएं व तालाब के पानी का इस विधि में उपयोग आसानी से कर सकते हैं।

(2) पम्प : सिंचाई के जल को फसलों तक इस विधि के द्वारा पहुंचाने के लिए एक पंप की आवश्यकता होती है। यह पंप सेन्ट्रीफ्यूगल या सबमर्सिबल हो सकता है। पंप की क्षमता का चुनाव सिंचाई क्षेत्र पर निर्भर करता है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिए ड्रिप प्रणाली का दबाव 1.2 किलोग्राम प्रति वर्ग सैं.मी. तथा फव्वारा प्रणाली का दबाव 2.6 कि.ग्रा. प्रति सैं.मी. होना चाहिए। टपका सिंचाई प्रणाली में फव्वारा सिंचाई प्रणाली की तुलना में कम क्षमता वाले पंप की आवश्यकता होती है। जल स्रोत ऊंचाई पर रखकर गुरुत्वाकर्षण बल की मदद से टपका विधि द्वारा सिंचाई की जा सकती है।

(3) फिल्टर यूनिट तथा रासायनिक खाद टैंक : पंप के बाद पानी के बहाव को नियंत्रित करने के लिए वाल्व लगा होता है। इसके बाद जल दबाव मापी व जल मात्रा के बारे में दर्शाते हैं। इसके बाद फिल्टर यूनिट लगी होती है। जो मिट्टी व गंदगी को छानकर पानी को साफ करती है। फिल्टर यूनिट में सैंड, स्क्रीन अथवा डिस्क फिल्टर का उपयोग होता है। इसके बाद रासायनिक खाद टैंक लगा होता है जो खाद का वितरण पानी के साथ करता है। इससे खाद पौधों की जड़ों में पहुंचाई जाती है।

(4) मुख्य पाईप लाईन : मुख्य पाइप लाईन एच.डी.पी.ई. (उच्च घनत्व पॉलीएथिलीन) की बनी हाती है। यह पाइप लाईन खेत को आधा-आधा बांटकर बीच में बिछाई जाती है। पाइप लाईन का व्यास 2.5-7.5 सैं.मी. तक होता है। मुख्य पाइप लाईन के ऊपरी तथा निचले सिरों में दबाव का अंतर 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

(5) लेट्रल लाईन : लेट्रल लाईन पी.वी.सी. (पॉली विनाइल क्लोराइड) की बनी होती है। लेट्रल लाईन पौधों की पंक्तियों के साथ-साथ बिछाई जाती है। लेट्रल लाईन 12 से 16 मि.मी. व्यास में उपलब्ध होती है। लेट्रल लाईन के ऊपर व नीचे के सिरे में दबाव का अंतर 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

(6) स्प्रिंकलर तथा ड्रिपर: स्प्रिंकलर के ऊपर लगा घुमाव यंत्र जल को गोलाकार क्षेत्र में बारिश की बूंदों के रूप में फसलों की सिंचाई करता है। स्प्रिंकलर एक समान जल के बंटवारे के लिए लगभग 60 प्रतिशत सिंचाई क्षेत्र को ओवर लैप करता है। ड्रिपर के सिंचाई क्षेत्र का व्यास लगभग 30-35 सैं.मी. तक का होता है। ●

---

[1]सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]उद्यान विभाग, हरियाणा।

वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं : कारण एवं समाधान

✍ **संतोष एवं कविता दुआ**
पारिवारिक संसाधन प्रबन्धन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्राचीन काल में वृद्धों की स्थिति अत्यंत उन्नत एवं सम्मानीय रही है। उन्हें समाज एवं परिवार में अलग वर्चस्व प्राप्त था। परिवार की समस्त बागडोर उनके हाथों हुआ करती थी। परिवार का कोई भी निर्णय उनकी सलाह के आधार पर होता था। इसी कारण पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे, परंतु भौतिकवादी युग में वृद्धों की समस्याओं का बढ़ना एवं समाज में उनकी उपयोगिता कम और समस्याएं बढ़ती नज़र आ रही हैं। बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव है और इस पड़ाव में जीवन अशक्त हो जाता है। जैसे–जैसे पश्चिमीकरण, भौतिकवाद का विकास हुआ वैसे–वैसे वृद्ध नागरिक उपेक्षा का शिकार होकर समस्याओं में घिर गये हैं। आज इन वृद्धों की समस्याओं के बहुत से कारण हैं, जो इस प्रकार हैं :

संयुक्त परिवार का विघटन : संयुक्त परिवारों का अशांत व घुटन भरा माहौल और नगरों की ओर तेज़ी से प्रस्थान करती हुई युवा पीढ़ी की अपने बुजुर्गों के प्रति उदासीनता ने उसे हमारे समाज में गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी है। आज की नई युवा पीढ़ी न तो बड़ों के अनुशासन में रहना चाहती है और न ही उनका आदर सम्मान करना चाहती है।

भौतिक सुख सुविधाओं की वृद्धि : भौतिक सुख सुविधाओं की वृद्धि होने के कारण आज की युवा पीढ़ी का रहन–सहन एवं जीवन शैली में बदलाव तेज़ी से देखा जा रहा है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों में इतना व्यस्त हो रहा है कि उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के साथ बैठना अब आवश्यक ही नहीं लगता, जिसकी सबसे बड़ी पीड़ा बुजुर्गों को ही झेलनी पड़ती है। आज की युवा पीढ़ी अपनी भौतिक सुख–सुविधाओं को अधिक महत्व देती है और वृद्धों पर कम।

नई–पुरानी पीढ़ी के बीच अंतर : इसके संबंध में कुछ अंतर हमेशा से रहा है जिसको पीढ़ी का अंतराल कहा जाता है। अगर विचार किया जाए तो यह पीढ़ियों के आचार–विचार, जीवन शैली, सोच का अंतर ही है।

धन का महत्व : आज के युग में धन का महत्व बढ़ने के कारण बच्चे बड़े होकर माता–पिता को जब तक उनके पास धन है, उन्हें अपनाते हैं। धन समाप्त होते ही वृद्धों का कोई महत्व नहीं बचता है और उन्हें वे बोझ समझने लगते हैं।

व्यक्तिवादिता या व्यक्गित स्वार्थ : आज के युग में नई पीढ़ी स्वार्थी हो गई है। वह अपना स्वार्थ देखकर ही कार्य करती है। वह अपने परिवार के वृद्धों की देखभाल तभी करती है जब वह समझती है कि उन्हें धन–दौलत, संपत्ति प्राप्त हो सकती है। वह अपने स्वार्थों की प्राप्ति के लिए प्रेरित हो जाती है। उनके अंदर अपने बुजुर्गों के प्रति सेवा, दया एवं त्याग कम होता जा रहा है क्योंकि वह वृद्धों की सेवा व कर्तव्य को अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानती है। इसलिए वे अपने हित के लिए वृद्धों को अनदेखा कर देती है।

वृद्धों की समस्याएं : वृद्धावस्था को जीवन का अंतिम पड़ाव एवं समस्या से घिरी हुई अवस्था माना जाता है क्योंकि इस अवस्था में वृद्धों को अनेक समस्याएं घेर लेती हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे दूसरों के साथ संबंध स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं। वृद्धों की समस्याओं एवं उनकी उपयोगिता भी समाज में कम होती नज़र आने लगी है, जो इस प्रकार है :

शारीरिक समस्या : वृद्धावस्था उतरते या ढ़लते काल हैं। इस अवस्था में शरीर शिथिल होने लगता है। वृद्धावस्था में शरीर में बदलाव का परिणाम सामाजिक बदलाव पर होता है। इस अवस्था में अनेक समस्याएं निर्मित होती हैं।

मानसिक समस्या : शारीरिक बदलाव के अनुसार मानसिक परिवर्तन भी होता है। इस अवस्था में प्रवेश करते ही मानसिक तनाव की स्थिति बनने लगती है तथा लोगों से संपर्क बनाना, सहयोगी या मित्रों के निधन हो जाने से मानसिक तनाव एक महत्वपूर्ण कारण है।

आर्थिक समस्या : यह समस्या वृद्धों की महत्वपूर्ण समस्या है। वृद्धों को आर्थिक समस्या का अभाव ज्ञात होने लगता है। कार्य क्षमता की कमी होती है जिससे दूसरों पर निर्भरता बढने लगती है और युवाओं द्वारा या परिवार के सदस्यों द्वारा उन्हें अकेला छोड़ दिया जाता है।

पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या : इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमज़ोर होने के कारण वे समूह एवं परिवार से अलग होने लगते हैं जिसके कारण सामाजिक व पारिवारिक संबंधों में बुरा असर होने लगता है। परिवार में सदस्यों के साथ मतभेद होने लगता है और नौकरी या व्यवसाय से मुक्त होने के कारण समाज एवं परिवार में उनका वर्चस्व, मान–सम्मान कम होने लगता है, जिससे इन्हें अपना जीवन यापन करना कठिन लगने लगता है।

अकेलापन की समस्या : परिवार से सामन्जस्य न कर पाना, अलगाव, पृथक्कीकरण की अनुभूति, युवा पीढ़ी द्वारा वृद्ध के अनुभवों, विचारों, परामर्श को उपेक्षित करने के कारण उन्हें घर से अलग या वृद्ध आश्रमों में रखा जाना या घर से निकाल देने जैसी समस्याएं देखने को मिलती हैं, जिससे वृद्धों में अकेलापन की समस्या का निर्माण होता है।

घर व समाज में अनादर की समस्या : किसी भी वृद्ध को समाज व परिवार में मान–सम्मान की अपेक्षा होती है लेकिन आज की संस्कृति के बदलते प्रभाव के कारण वृद्धों का अनादर देखने को मिलने लगा है, जिससे उन्हें घर में अपेक्षानुसार मान–सम्मान की जगह अनादर मिलने लगा है।

परावलंबन की भावना की समस्या : वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है जब उनकी अपने परिवार व बच्चों पर निर्भरता अधिक होती है और इस समय पर उन्हें घर व परिवार से अलग करने की रणनीति आज के समाज के युवा बनाने लगते हैं, तब उनमें परावलंबन की भावना की समस्या निर्मित होने लगती है।

निष्कर्ष व सुझाव : वृद्धों को महसूस होने वाली समस्या मुख्यत: शारीरिक है और अधिकांश वृद्धों को स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव की समस्या काफी तीव्रता से महसूस होती है। वृद्धों की सबसे बड़ी समस्या है उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें आर्थिक संसाधनों की कमी तीव्रता से महसूस होती है। तीसरी प्रमुख समस्या पराबलंबन की भावना, समाज एवं परिवार में अनादर, अकेलेपन की भावना, अनुपयोगिता की भावना इत्यादि अन्य समस्याएं हैं जो वृद्धों को महसूस होती हैं।

सुझाव : इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक समस्या वृद्धों की प्रमुखतम समस्या है और इस कारण संशोधनकर्ताओं का सुझाव है कि वृद्धों के लिए बेहतर स्वास्थ्य सेवायें उपलब्ध कराई जाएं एवं स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाये। वृद्धों की आर्थिक समस्या कम करने के लिए और अकेलापन की भावना इत्यादि को कम करने के लिए स्वयं सहायता समूह विकसित किये जाएं, जिससे उन्हें आर्थिक सहायता मिलेगी। उनका अनुभव विकसित होगा और अकेलेपन की भावना भी कम होगी। वृद्धों की देखभाल एवं उनका उचित आदर से संबंधित बातें लोगों को बतानी चाहिएं। ●

कपड़ों की खरीददारी हेतु सुझाव

पूनम कुमारी, नीलम रोज एवं निगम रानी
वस्त्र और परिधान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

प्रत्येक व्यक्ति कपड़ा खरीदता है। सही कपड़ा खरीदना भी एक कला है जो कपड़े के बारे में जानकारी पर निर्भर करती है। आज का कपड़ा बाज़ार काफी पेचीदा हो गया है क्योंकि बाज़ार में कपड़ों का भण्डार व अनगिनत किस्में मौजूद हैं। इसके अलावा विज्ञापन भी एक से बढ़कर एक दिये जाते हैं जिसकी वजह से लोग भ्रमित होकर गलत कपड़ा खरीद लेते हैं। कपड़ा खरीदने से पहले निम्नलिखित बातें ध्यान रखनी चाहिएं :

1. कपड़े जो इस महीने खरीदने हैं उनका बजट अवश्य बनाएं।
2. जब आप कपड़े खरीदने के बारे में विचार करें, तो सबसे पहले अपनी आवश्यकताओं के अनुसार एक सूची बना लें एवं उसी सूची अनुसार खरीददारी करें जिससे आप अनावश्यक खरीददारी से बचेंगे।
3. सूची बनाने के बाद इस बात का निर्णय अपने बजट के अनुसार करें कि किस प्रकार के वस्त्रों पर कितना खर्च करना है जैसे पहनने वाले वस्त्रों का बजट, बेडशीट आदि का बजट।
4. कपड़े खरीदने से पहले ध्यान दें कि आपको किस वस्त्र की आवश्यकता अधिक है। कई बार मिक्स एंड मैच करके कपड़े खरीदे जाते हैं, ऐसे में अगर आप कई कुर्ते या टॉप खरीद रहे हैं और उससे मैच करता हुआ ट्रॉउज़र या लेगिंग आपके पास पहले से ही मौजूद है, तो उसकी खरीददारी न करें।
5. खरीददारी करने जाने से पहले दुकानों की जानकारी लें।
6. कपड़ा खरीदने से पहले कपड़े की कीमत एवं गुणवत्ता की जानकारी 2-3 जगह से ले लेनी चाहिए और फिर जहाँ कपड़ा सही कीमत पर मिले वहीं से खरीदें।
7. कपड़े खरीदते समय इस बात का ध्यान रखें कि जहां उसके रंग पक्के हों, वहीं उस पर बना प्रिंट कच्चा न हो जो कि एक-दो धुलाई के बाद ही उड़ जाए। इसके लिए आप कपड़ों को पलट कर देखें, यदि उल्टी तरफ प्रिंट की छपाई नज़र नहीं आ रही है, तो उसे न लें, क्योंकि वह कच्चे प्रिंट होते हैं।
8. कपड़े का रंग कच्चा है या पक्का की जांच कपड़े के एक कोने पर पानी डालकर रगड़ें फिर उसे सफेद कपड़े पर रगड़ कर देखें।
9. रंगीन सूती कपड़ों को उनकी पहली धुलाई से पहले नमक वाले पानी में भिगो दें, जिससे कि उनका रंग बार-बार न निकले।
10. कपड़े उसी रंग के खरीदें जो आपके ऊपर फबें, इस बात का हमेशा ध्यान रखें कि हर आदमी पर एक ही रंग अच्छा नहीं लगता है, इसलिए अपने शरीर के रंग के अनुसार ही कपड़ों के रंगों का चयन करें।
11. जिस व्यक्ति के लिए कपड़ा खरीद रहें हों, ध्यान शक्ति से कपड़ों को उसमें ढाल कर देखें कि वो कैसा लगेगा।
12. व्यक्ति की पसंद, उम्र व उसके कार्य को ध्यान में रख कर रंग का चुनाव करें।
13. जल्दबाजी में आकर खरीददारी न करें।
14. अपने बजट के अनुसार ही खरीददारी करें।
15. कपड़े खरीदते समय इस बात का ध्यान रखें कि क्या इस कपड़े की भविष्य में आवश्यता पड़ेगी।
16. कपड़े पर लगा चिन्ह व छापा अवश्य पढ़ें तथा जानकारी प्राप्त करें कि कपड़ा शत-प्रतिशत एक रेशे का है या भिन्न-भिन्न रेशों से मिलकर बना है।
17. शत-प्रतिशत ऊनी वस्त्र खरीदने के लिए उस पर छपा (आठ) का निशान अवश्य देखें अन्यथा वह कृत्रिम ऊन है ।
18. रेशे की शुद्धता की पहचान के लिए कपड़े से कुछ धागे निकाल कर दुकान से बाहर जलाकर देखें। अगर धागा जलते समय कागज़ जलने जैसी गंध आ रही है तो धागा सूती है और यदि बाल या दूध जलने जैसी गंध आ रही है तो धागा ऊनी व रेशमी है और यदि तीखी गंध आ रही है तो धागा कृत्रिम रेशे का बना है।
19. कपड़े की कीमत की बजाय मज़बूती पर अधिक ध्यान दें।
20. कपड़े की चौड़ाई (अर्ज) अवश्य देखें।
21. कपड़े का सही रंग प्राकृतिक रोशनी में देखें क्योंकि ट्यूब की रोशनी में कपड़ा अधिक चमकदार एवं उसके सही रंग का भी पता नहीं चलता है।
22. जब हम थान में से कपड़ा खरीदते हैं, तो कुछ दुकानदार विभिन्न तरीकों से उसे कम नापते हैं जैसे : वे मीटर का प्रयोग नहीं करते बल्कि कपड़े पर लगे चिन्ह से नापते हैं जो कि सही नहीं होते। कभी-कभी काउंटर पर निशान लगा लिए जाते हैं, जिन्हें मीटर की बजाय प्रयोग किया जाता हैं। वे कपड़े को नापते समय खींचते हैं और मीटर को एक सिरे पर काट या मोड़ देते हैं जिससे कपड़ा अधिकांशतः कम नाप का कटता है इसलिए कपड़ा लेते हुए इन सब बातों पर अवश्य ध्यान दें।
23. सिले-सिलाए वस्त्र खरीदते समय उचित नाप, फिटिंग, मज़बूत सिलाई, बटन काज, कपड़े की प्रकार इत्यादि पर ध्यान दें।
24. सेल व लुभावने ऑफर्स के चक्करों में न पड़ें क्योंकि अधिकतर सेल पुराने व घटिया (क्षतिग्रस्त) वस्त्रों को बेचने के लिए लगाई जाती है।
25. कम खरीदें परन्तु गुणवत्तापूर्ण वस्त्र ही खरीदें और जब आप ऐसे वस्त्र खरीदेंगे तो कीमत भी लगेगी ही लगेगी। लोग अक्सर सस्ते के चक्कर में गलत चीज़ खरीद बैठते हैं और बाद में पछताने के सिवा कोई चारा नहीं बचता है। इसलिए यदि बजट कम पड रहा हो तो कुछ दिन रूक जाना अधिक बेहतर है। सेकेंड हेंड, आधी कीमत इत्यादि के लोभ में न रहें।
26. दुकानदार की मीठी-मीठी बातों में न आएं।
27. अगर आपको किसी भी तरह का शक है तो कपड़ा वापिस करने की गारंटी दुकानदार से अवश्य लें।
28. कपड़ा खरीदने के बाद बिल अवश्य लें।
29. अगर दुकानदार वापिस न ले तो उपभोक्ता न्यायालय में शिकायत दर्ज करवायें। ●

वर्चुअल कृषि मेला : बदलते समय की नई सोच

✍ **अशोक कुमार, राजेश कुमार एवं सूबे सिंह**
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

देश की बहुत बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है। कृषि अनाज उत्पादन की मशीन के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी भी है। कोरोना महामारी में दूसरों का पेट भरने वाले किसानों का पेट खाली न रहे इसके लिए कृषि से सम्बन्धित नई-नई तकनीकों का उन तक पहुंचना बहुत आवश्यक है ताकि किसान इन तकनीकों को अपनाकर अपना जीवन भली-भांति व्यतीत कर सकें।

कृषि की नई-नई तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने का सबसे सरल तरीका कृषि मेला है। कृषि मेले की उपयोगिता को देखते हुए चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार प्रत्येक वर्ष दो कृषि मेलों (रबी व खरीफ) का आयोजन करता है। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार का कृषि मेला हमेशा से किसानों में आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस मेले में हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली राज्य के किसान हिस्सा लेते हैं।

कोविड महामारी के कारण कृषि मेले का स्वरूप बदल दिया गया है। इस वर्ष विश्वविद्यालय वर्चुअल कृषि मेला (खरीफ) 9-10 मार्च को आयोजित कर रहा है। इस मेले का मुख्य विषय "फसलों में विविधीकरण" रहेगा। पूर्व में भी विश्वविद्यालय वर्चुअल कृषि मेले (रबी) का सफल आयोजन करके कोरोना महामारी के समय किसानों को नवीनतम कृषि सम्बन्धी जानकारी प्रदान करने में कामयाब रहा है। इस कृषि मेले में लगभग 57000 किसानों ने रजिट्रेशन करवा एवं लगभग 163000 किसानों ने कृषि मेले की वेबसाइट पर कृषि मेले का सीधा प्रसारण देखा। कृषि मेला खरीफ के लिए एक वेब प्लेटफार्म बनाया गया है जिसके द्वारा किसान कृषि मेले से जुड़कर कृषि सम्बन्धित जानकारी ले सकते हैं।

कृषि मेले के मुख्य आकर्षण :

1. चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं विज्ञान विश्वविद्यालय (लुवास) के विभिन्न विभागों, कृषि सम्बन्धी प्राइवेट फर्मों एवं सरकारी विभागों की वर्चुअल प्रदर्शनी भी लगाई जाएगी।
2. किसानों को कृषि विश्वविद्यालयों व संसाधनों द्वारा विकसित कृषि व संबंधित तकनीकी नई फसलों संबंधी प्रदर्शन इकाइयां, कृषि आधारित स्वरोज़गार व आमदनी बढ़ाने वाले व्यवसाय जैसे मधुमक्खी पालन, खुम्ब उत्पादन, डेयरी पालन, बकरी पालन, मत्स्य पालन, संरक्षित खेती, फल व फूल खेती, सब्जी व फलों का परिरक्षण व मूल्य संवर्धन इत्यादि व नए-नए कृषि उपकरणों/यंत्रों की जानकारी वर्चुअल कृषि मेले के माध्यम से दी जाएगी।
3. कृषि विश्वविद्यालय द्वारा कृषि वैज्ञानिकों की देखरेख में तैयार खरीफ फसलों के बीजों की उपलब्धता भी सुनिश्चित की जाएगी।
4. दो-दिवसीय कृषि मेले के दौरान किसानों को कृषि तकनीकी जानकारी प्रदान करने हेतु कृषि विशेषज्ञों की सहायता से विभिन्न वैबीनार आयोजित किए जाएंगे व किसानों से सीधा संवाद करके उनकी कृषि सम्बन्धित समस्याओं का निदान करने का प्रयास किया जाएगा।
5. किसानों को कृषि वैज्ञानिकों, सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों के अधिकारियों से चर्चा या विचार-विमर्श करने का अवसर मिल सकता है।
6. किसान मेले में अपने खेतों की मिट्टी व ट्यूबवैल के पानी की जांच कैसे करवाएं के बारे में जानकारी दी जाएगी।
7. किसानों को विश्वविद्यालय द्वारा विकसित व प्रकाशित किसानों से संबंधित विभिन्न साहित्य की जानकारी दी जाएगी।
8. चौधरी चरण सिंह हरियाणा विश्वविद्यालय के सभी 19 कृषि विज्ञान केन्द्र अपने-अपने ज़िलों में किसानों को इस वर्चुअल कृषि मेले से जोड़ेंगे तथा खेती में विशेष योगदान देने वाले हर ज़िले के एक प्रगतिशील किसान को कृषि विज्ञान केन्द्र पर ही सम्मानित किया जाएगा।

सारांश

किसान, किसान वर्चुअल मेले में सहभागी बनकर अपनी कृषि संबंधित समस्याओं का समाधान पा सकते हैं। किसानों को किसान मेले में कृषि व संबंधित तकनीकियों के हर प्रश्न का उत्तर एक ही स्थान पर मिल जाता है। वास्तव में किसान मेला किसानों के लिए एक उत्तम स्रोत है जिसमें भाग लेकर किसान कृषि विज्ञान की बारीकियों से समझ-बूझ कर अपना फसल उत्पादन व कृषि व्यवसाय बढ़ा सकते हैं। किसान अपने कृषि विज्ञान केन्द्र से सम्पर्क करके अथवा विश्वविद्यालय की निःशुल्क फोन सेवा से (188-180-3001, 1800-180-3111 एवं 1800-180-4002) पर फोन कर कृषि मेला (खरीफ) की अधिक जानकारी ले सकते हैं। ●

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स, नई दिल्ली नं. 19451/69

हमारी निःशुल्क दूरभाष सेवाएं

हिसार	:	**1800 180 3001** **सोमवार, बुधवार, शुक्रवार** **समय : 10–12 बजे**
बावल	:	**1800 180 4002** **सोमवार, बुधवार, शुक्रवार** **समय : 10–12 बजे**
करनाल	:	**1800 180 3111** **मंगलवार, वीरवार**

प्रकाशक : डॉ. आर. एस. हुड्डा, निदेशक विस्तार शिक्षा द्वारा चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार के लिए डॉ. एच. एस. सहारण, सह–निदेशक प्रकाशन के प्रबन्ध में चौ. च. सिं. ह. कृ. वि. मुद्रणालय, हिसार से मुद्रित एवं प्रकाशित/दिनांक 5.3.2021/मासिक